# आँख की किरकिरी

# चौथा भाग

https://www.hindiadda.com/aankh-kee-kirakiree-part-iv/

37.रात के अँधेरे में बिहारी कभी अकेले ध्यान नहीं लगाता। अपने लिए अपने को उसने कभी भी आलोच्य नहीं बनाया। वह पढ़ाई-लिखाई, काम-काज, हित-मित्रों में ही मशगूल रहता। अपने बजाय अपने चारों तरफ की दुनिया को प्रमुखता दे कर वह मजे में था। लेकिन अचानक जोर के धक्के से एक दिन उसका सब कुछ विच्छिन्न हो गया| प्रलय के अँधेरे में वेदना की आकाश-छूती चोटी पर उसे अकेले खुद को ले कर खड़ा होना पड़ा। उसी समय अपने निर्जन संग से उसे भूल कर भी अवकाश नहीं देना चाहता।

लेकिन आज अपने उस भीतर वाले को बिहारी किसी भी तरह से दूर न रख सका। कल वह विनोदिनी को उसके घर छोड़ आया, उसके बाद जो भी काम, जिस भी आदमी के साथ जुटा रहा है, उसका गुफा के अंदर का वेदनामय हृदय उसे अपने गहरे एकांत की ओर लगातार खींच रहा था।

थकावट और अवसाद ने आज बिहारी को परास्त कर दिया। रात के ठीक नौ बजे होंगे। घर के सामने दक्खिन वाली छत पर गर्मी के दिन-ढले की हवा उतावली-सी हो उठी थी। वह अँधेरी छत पर एक आराम-कुर्सी पर बैठ गया।

आज शाम को उसने बसन्त को पढ़ाया नहीं - जल्दी ही वापस कर दिया। आज सांत्वना के लिए, संग के लिए, प्रेम-सुधा-सने अपने पिछले जीवन के लिए उसका हृदय मानो माँ द्वारा त्यागे गए शिशु की तरह संसार के अँधेरे में दोनों बाँहें फैला कर न जाने किसे खोज रहा था! जिनके बारे में न सोचने की उसने कसम खाई थी| उसका अंतर्मन उन्हीं की ओर दौड़ रहा था- रोकने की शक्ति ही नहीं रह गई थी।

छुटपन से छूट जाने तक महेंद्र से उसकी मैत्री की जो कहानी रंगों में चित्रित, जल-स्थल, नदी-पर्वत में बँटी मानचित्र-जैसी उसके मन में सिमटी पड़ी थी, बिहारी ने उसे फैला दिया। लेकिन फिर भी यह बिछोह और वेदना अनोखी नेह-किरणों रँगी माधुरी से भरी-पूरी रही। उसके बाद जिस शनि का उदय हुआ, जिसने मित्र के स्नेह, दंपति के प्रेम घर की शांति और पवित्रता को एकबारगी मटियामेट कर दिया, उस विनोदिनी को बिहारी ने बेहद घृणा से अपने मन से निकाल फेंकने की कोशिश की। लेकिन गजब! चोट गोया निहायत हल्की हो आई, उसे छू न सकी। वह अनोखी खूबसूरत पहेली अपनी अगम रहस्यभरी घनी काली आँखों की स्थिर निगाह लिए कृष्ण पक्ष के अँधेरे में बिहारी के सामने डट कर खड़ी हो गई। गर्मी की रात की उमगी हुई दक्खिनी बयार उसी के गहरे नि:श्वास-सी बिहारी को छूने लगी। धीरे-धीरे उन अपलक आँखों की जलती हुई निगाह मलिन हो आने लगी, प्यास से सूखी वह तेज

नजर आँसुओं में भीग कर स्निग्ध हो गई और देखते-ही-देखते गहरे भाव रस में डूब गई। अचानक उस मूर्ति ने बिहारी के कदमों के पास लौट कर उसकी दोनों जाँघों को जी-जान से अपनी छाती से पकड़ लिया। उसके बाद एक अनूठी मायालता की तरह उसने पल में बिहारी को लपेट लिया और फैल कर तुरंत खिले सुगंधित फूल- जैसे चुम्बनोन्मुख मुखड़े को बिहारी के होंठों के पास बढ़ा दिया। आँखें मूँद कर अपनी सुधियों की दुनिया से बिहारी उस कल्पमूर्ति को निर्वासित कर देने की चेष्टा करने लगा; लेकिन उस पर आघात करने को उसका हाथ हर्गिज न उठा! एक अधूरा अकुलाया चुंबन उसके मुँह के पास उत्सुक हो रहा - पुलक से उसने उसे आच्छन्न कर दिया।

छत पर के सूने अँधेरे में बिहारी और न रह सका। किसी और तरफ ध्यान बँटाने के खयाल से वह जल्दी-जल्दी चिराग की रोशनी से जगमग कमरे में चला आया।

कोने में तिपाई पर रेशमी कपड़े में टँकी एक मढ़ी हुई तस्वीर थी। बिहारी ने कपड़ा हटाया, तस्वीर को ले कर रोशनी के पास बैठा और उसे अपनी गोद में रख कर देखने लगा।

तस्वीर महेंद्र और आशा की थी - ब्याह के तुरंत बाद की। उसमें महेंद्र ने अपने लेख में 'महेंद्र भैया' और आशा ने 'आशा' लिख दिया था।

तस्वीर को अपनी गोद में रख कर धिक्कारते हुए बिहारी ने विनोदिनी को मन से दूर हटाना चाहा। लेकिन विनोदिनी की प्रेम-कातर, यौवन-कोमल बाँहें बिहारी की जाँघों को जकड़े रहीं। बिहारी मन-ही-मन बोला - 'प्रेम की इतनी अच्छी दुनिया को तबाह कर दिया! लेकिन विनोदिनी का उमगा आकुल चुंबन-निवेदन उससे चुपचाप कहने लगा- 'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। सारी दुनिया में मैंने तुम्हीं को अपनाया है।'

'लेकिन यही क्या इसका उत्तर हुआ! एक उजड़ी हुई दुनिया की करुणा भरी चीख को यह बात ढक सकती है! पिशाचिन!'

पिशाचिन! यह बिहारी की निखालिस झिड़की थी या इसमें जरा स्नेह का सुर भी आ मिला था? जीवन में प्रेम के सारे अधिकारों से वंचित हो कर जब वह निरा भिखारी-सा राह पर जा खड़ा हुआ, तब अनमाँगे अजस्र प्रेम के ऐसे उपहार को वह तहेदिल से ठुकरा सकता है! और इससे बेहतर उसे मिला भी क्या! अब तक तो वह अपने जीवन की बलि दे कर प्रेम की अन्नपूर्णा ने महज उसी के लिए सोने की थाली

में पकवान परोस कर भेजा है, तो किस संकोच से वह अभागा अपने को उससे वंचित करे?

तस्वीर को गोद में रखे वह इसी तरह की बातों में डूबा हुआ था कि पास ही आहट हुई। चौंक कर देखा, महेंद्र आया है। वह हड़बड़ी में खड़ा हो गया। तस्वीर गोद से फर्श के कालीन पर लुढ़क पड़ी। बिहारी ने इसका खयाल न किया।

महेंद्र एकबारगी पूछ बैठा - 'विनोदिनी कहाँ है?'

बिहारी ने जरा आगे बढ़ कर उसका हाथ थाम लिया। बोला - 'महेंद्र भैया, बैठ जाओ, अभी बातें करते हैं।' महेंद्र ने कहा - 'मेरे पास बैठने और बात करने का वक्त नहीं है। तुम यह बताओ कि विनोदिनी कहाँ है?'

बिहारी ने कहा - 'तुम जो पूछ रहे हो, एक वाक्य में जवाब नहीं दिया जा सकता। उसके लिए जरा बैठना पड़ेगा।'

महेंद्र ने कहा - 'उपदेश दोगे? वे सारे उपदेश मैं बचपन में ही पढ़ चुका हूँ।'

बिहारी - 'नहीं। उपदेश देने का न तो मुझे अधिकार है, न क्षमता।'

महेंद्र - 'तो धिक्कारोगे? मुझे पता है, मैं पापी हूँ, और तुम जो कहोगे, वह सब हूँ मैं। लेकिन सिर्फ इतना पूछना चाहता हूँ, विनोदिनी कहाँ है?'

बिहारी - 'मालूम है।'

महेंद्र - 'मुझे बताओगे या नहीं?'

बिहारी - 'नहीं बताऊँगा।'

महेंद्र - 'तुम्हें बताना ही पड़ेगा। तुम उसे चुरा लाए हो और छिपा कर रखे हुए हो। वह मेरी है। मुझे लौटा दो।'

बिहारी कुछ क्षण ठगा-सा रहा। फिर दृढ़ता से बोला -'वह तुम्हारी नहीं है। मैं उसे चुरा कर भी नहीं लाया - वह खुद-ब-खुद मेरे पास आई है।'

महेंद्र चीख उठा- 'सरासर झूठ!'

और महेंद्र ने बगल के कमरे के दरवाजे पर धक्का देते हुए आवाज दी - 'विनोद! विनोद!'

अंदर से रोने की आवाज सुनाई पड़ी। बोला - 'कोई डर नहीं विनोद, मैं महेंद्र हूँ - मैं तुम्हें कोई कैद करके नहीं रख सकता।'

महेंद्र ने जोर से धक्का दिया कि किवाड़ खुल गया। दौड़ कर अंदर गया। कमरे में अँधेरा था। धुँधली छाया-सी उसे लगी। न जाने वह किस डर के मारे काठ हो कर तकिए से लिपट गया। जल्दी से बिहारी कमरे में आया। बिस्तर से बसंत को गोद में उठा कर दिलासा देता हुआ बोला - 'डर मत बसंत, मत डर।'

महेंद्र लपक कर वहाँ से निकला। घर के एक-एक कमरे की खाक छान डाली। उधर से लौट कर देखा, अब भी बसन्त डर से रह-रह कर रो उठता था। बिहारी ने उसके कमरे की रोशनी जलाई। उसे बिछौने पर सुला कर बदन सहलाते हुए उसे सुलाने की चेष्टा करने लगा।

महेंद्र ने आ कर पूछा - 'विनोदिनी को तुमने कहाँ रखा है?'

बिहारी ने कहा **-** 'महेंद्र भैया, शोर न मचाओ। नाहक ही तुमने इस बच्चे को इतना डरा दिया कि यह बीमार हो जाएगा। मैं कहता हूँ, विनोदिनी के बारे में जानने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं।'

महेंद्र बोला - 'महात्मा जी, धर्म का आदर्श न बनो। मेरी स्त्री की तस्वीर अपनी गोद में रख कर इस रात को किस देवता के ध्यान में किस पुण्य मंत्र का जाप कर रहे थे? पाखंडी!'

कह कर महेंद्र ने तस्वीर को जूते से रौंद कर चूर-चूर कर डाला और फोटो के टुकड़े-टुकड़े करके बिहारी पर फेंक दिया। उसका पागलपन देख कर बसन्त फिर रो पड़ा। गला रुँध आया बिहारी का। अंगुली से दरवाजे का इशारा करते हुए वह बोला - 'जाओ!'

महेंद्र आँधी की तरह वहाँ से निकल गया।

38.रेल के औरतों वाले सूने डिब्बे में बैठी विनोदिनी ने खिड़की में से जब जुते हुए खेत और बीच-बीच में छाया से घिरे गाँव देखे, तो मन में सूने शीतल गाँव की जिंदगी ताजा हो आई। उसे लगने लगा, पेड़ों की छाया के बीच अपने-आप बनाए कल्पना के

बसेरे में अपनी किताबों से उलझ कर कुछ दिनों के इस नगर-प्रवास के दु:ख-दाह और जख्म से उसे शांति मिलेगी।

प्यासी छाती में चैन की वह उम्मीद ढोती हुई विनोदिनी अपने घर पहुँची। मगर हाय, चैन कहाँ! वहाँ तो केवल शून्यता थी, थी गरीबी। बहुत दिनों से बंद पड़े सीले घर के भाप से उसकी साँस अटकने लगी। घर में जो थोड़ी-बहुत चीजें थीं, उन्हें कीड़े चाट गए थे, चूहे कुतर गए थे, गर्द से बुरा हाल था। वह शाम को घर पहुँची - और घर में पसरा था बाँह-भर अँधेरा। सरसों के तेल से किसी तरह रोशनी जलाई- उसके धुएँ और धीमी जोत से घर की दीनता और भी साफ झलक उठी। पहले जिससे उसे पीड़ा नहीं होती थी, वह अब असह्य हो उठी| उसका बागी हृदय अकड़ कर बोल उठा - 'यहाँ तो एक पल भी नहीं कटने का। ताक पर दो-एक पुरानी पत्रिकाएँ और किताबें पड़ी थीं, किन्तु उन्हें छूने को जी न चाहा। बाहर सन्न पड़े-से आम के बगीचे में झींगुर और मच्छरों की तानें अँधेरे में गूँजती रहीं।

विनोदिनी की जो बूढ़ी अभिभाविका वहाँ रहती थी, वह घर में ताला डाल कर अपनी बेटी से मिलने उसकी ससुराल चली गई थी। विनोदिनी अपनी पड़ोसिन के यहाँ गई। वे तो उसे देख कर दंग रह गईं। उफ, रंग तो खासा निखर आया है, बनी-ठनी, मानो मेम साहब हो। इशारे से आपस में जाने क्या कह कर विनोदिनी पर गौर करती हुई एक-दूसरे का मुँह ताकने लगीं।

विनोदिनी पग-पग पर यह महसूस करने लगी कि अपने गाँव से वह सब तरह से बहुत दूर हो गई है। अपने ही घर में निर्वासित-सी। कहीं पल भर आराम की जगह नहीं।

डाक खाने का बूढ़ा डाकिया विनोदिनी का बचपन से परिचित था। दूसरे दिन वह पोखर में डुबकी लगाने जा रही थी कि डाक का थैला लिए उसे जाते देख विनोदिनी अपने आपको न रोक सकी। अँगोछा फेंक जल्दी से बाहर निकल कर पूछा - 'पंचू भैया, मेरी चिट्ठी है?'

बुड्ढे ने कहा - 'नहीं।'

विनोदिनी उतावली हो कर बोली - 'हो भी सकती है। देखूँ तो जरा।'

यह कह कर उसने चिट्ठियों को उलट-पलट कर देखा। पाँच-छ: ही तो चिट्ठियाँ थीं। मुहल्ले की कोई न थी। उदास-सी जब घाट पर लौटी तो उसकी किसी सखी ने ताना दिया- 'क्यों री बिन्दी, चिट्ठी के लिए इतनी परेशान क्यों?'

दूसरे एक बातूनी ने कहा - 'अच्छी बात है, अच्छी! डाक के जरिये चिट्ठी आए, ऐसा भाग कितनों का होता है? हमारे तो पति, देवर, भाई परदेस में काम करते हैं, मगर डाकिए की मेहरबानी तो कभी नहीं होती।'

बातों-ही-बातों में मजाक साफ चिकोटी गहरी होने लगी। विनोदिनी बिहारी से निहोरा कर आई थी - निहायत ही रोज-रोज लिखते न बने, तो कम-से-कम हफ्ते में दो बार तो दो पंक्तियाँ जरूर लिखे। आज ही बिहारी की चिट्ठी आए, यह उम्मीद नहीं के बराबर ही थी, लेकिन आकांक्षा ऐसी बलवती हो कि वह दूर-संभावना की आशा भी विनोदिनी न छोड़ सकी। उसे लगने लगा, जाने कब से कलकत्ता छूट गया है!

गाँव में महेंद्र को ले कर किस कदर उसकी निंदा हुई थी, दोस्त-दुश्मन की दया से यह उसकी अजानी न रही। शांति कहाँ!

गाँव के लोगों से उसने अपने को अछूता रखने की कोशिश की। लोग-बाग इससे और भी बिगड़ उठे। पापिनी को पास पा कर घृणा और पीड़न के विलास सुख से अपने को वे वंचित नहीं रखना चाहते।

छोटा-सा गाँव - अपने को सबसे छिपाए रखने की कोशिश बेकार है। यहाँ जख्मी हृदय को किसी कोने में दुबका कर अँधेरे में सेवा-जतन की गुंजाइश नहीं - जहाँ-तहाँ से कौतूहल-भरी निगाह जख्म पर आ कर पड़ने लगी। उसका अंतर टोकरी में बंद पड़ी ज़िंदा मछली-सा तड़पने लगा। यहाँ आज़ादी के साथ पूरी तरह दु:ख भोग सकने की भी जगह नहीं।

दूसरे दिन जब चिट्ठी का समय निकल गया तो कमरा बंद करके विनोदिनी पत्र लिखने बैठी -

'भाई साहब, डरो मत, मैं तुम्हें प्रेम-पत्र लिखने नहीं बैठी हूँ। तुम मेरे विचारक हो, तुम्हें प्रणाम करती हूँ। मैंने जो पाप किया, तुमने उसकी बड़ी सख्त सजा दी। तुम्हारा हुक्म होते ही मैंने उस सजा को माथे पर रख लिया है। अफसोस इसी बात का है कि तुम देख नहीं सके कि यह सजा कितनी कड़ी है। देख पाते, कहीं जान पाते, तो तुम्हारे मन में जो दया होती, मैं उससे भी वंचित रही। तुम्हें याद करके, मन-ही-मन

तुम्हारे पाँवों के पास माथा टेके मैं उसे भी बर्दाश्त करूँगी। लेकिन प्रभु, कैदी को क्या खाना भी नसीब नहीं होता? व्यंजन न सही, जितना-भर न मिलने से काम नहीं चल सकता, उतना भोजन तो उसका बँधा होता है? मेरे इस निर्वासन का आहार है तुम्हारी दो पंक्तियाँ - वह भी न बदा हो तो वह निर्वासन-दंड नहीं, प्राण-दंड है। सजा देने वाले मेरी इतनी बड़ी परीक्षा न लो। मेरे पापी मन में दंभ की हद न थी - स्वप्न में भी मुझे यह पता न था कि किसी के आगे मुझे इस कदर सिर झुकाना पड़ेगा। जीत तुम्हारी हुई प्रभो, मैं बगावत न करूँगी। मगर मुझ पर रहम करो, मुझे जीने दो। इस सूने जंगल में रहने का थोड़ा-बहुत सहारा मुझे दिया करना। फिर तो तुम्हारे शासन से मुझे कोई भी किसी भी हालत में डिगा न सकेगा। यही दुखड़ा रोना था। और जो बातें जी में हैं, कहने को कलेजा मुँह को आता है। पर वे बातें तुम्हें न बताऊँगी, मैंने शपथ ली है। उस शपथ को मैंने पूरा किया।

**-** तुम्हारी विनोदिनी।'

विनोदिनी ने पत्र डाक में डाल दिया। मुहल्ले के लोग छि:-छि: करने लगे। कमरा बंद किए रहती है, चिट्ठी लिखा करती है, चिट्ठी के लिए डाकिए को जा कर तंग करती है - दो दिन कलकत्ता रहने से क्या लाज-धरम को इस तरह घोल कर पी जाना चाहिए!

उसके बाद के दिन भी चिट्ठी न मिली। विनोदिनी दिन-भर गुमसुम रही।

बिहारी का उसके पास कुछ भी न था - एक पंक्ति की चिट्ठी तक नहीं। कुछ भी नहीं। वह शून्य में मानो कोई चीज खोजती फिरने लगी। बिहारी की किसी निशानी को अपने कलेजे से लगा कर सूखी आँखों में वह आँसू लाना चाहती थी। आँसुओं में मन की सारी कठिनता को गला कर, विद्रोह की भभकती आग को बुझा कर, वह बिहारी के कठोर आदेश को अंतर के कोमलतम प्रेम-सिंहासन पर बिठाना चाहती थी। लेकिन सूखे के दिनों की दोपहरी के आसमान-जैसा उसका कलेजा सिर्फ जलने लगा।

विनोदिनी ने सुन रखा था, हृदय से जिसे पुकारो, उसे आना ही पड़ता है। इसीलिए हाथ बाँधे आँखें मूँद कर वह बिहारी को पुकारने लगी - 'मेरा जीवन सूना पड़ा है, हृदय सूना है, चारों ओर सुनसान है - इस सूनेपन के बीच तुम एक बार आओ। घड़ी-भर को ही सही - तुम्हें आना पड़ेगा। मैं तुम्हें हर्गिज नहीं छोड़ सकती।' हृदय से इस तरह

पुकारने से विनोदिनी को मानो सच्चा बल मिला। उसे लगा, प्रेम की पुकार का यह बल बेकार नहीं जाने का।

साँझ का दीप-विहीन अँधेरा कमरा जब बिहारी के ध्यान से घने तौर पर परिपूर्ण हो उठा, जब दीन-दुनिया, गाँव-समाज, समूचा त्रिभुवन प्रलय में खो गया तो अचानक दरवाजे पर थपकी सुन कर विनोदिनी झट-पट जमीन पर से उठ खड़ी हुई और दृढ़ विश्वास के साथ दौड़ कर दरवाजा खोलती हुई बोली - 'प्रभु, आ गए?' उसे पक्का विश्वास था कि इस घड़ी दूसरा कोई उसके दरवाजे पर नहीं आ सकता।

महेंद्र ने कहा - 'हाँ, आ गया विनोद!'

विनोदिनी बेहद खीझ से बोल उठी- 'चले जाओ, चले जाओ, चले जाओ यहाँ से। अभी चल दो तुरंत।'

महेंद्र को मानो काठ मार गया।

'हाँ री बिन्दी, तेरी ददिया सास अगर कल...' कहते-कहते कोई प्रौढ़ा पड़ोसिन विनोदिनी के दरवाजे पर आ कर सहसा 'हाय राम!' कहती हुई लंबा घूँघट काढ़ कर भाग गई।

39.टोले में एक हलचल-सी मच गई। देवी थान में इकट्ठे हो कर बड़े-बूढ़ों ने कहा - 'अब तो बर्दाशत के बाहर है। कलकत्ता के कारनामों को अनसुना भी किया जा सकता था - मगर इसकी यह हिम्मत! लगातार महेंद्र को चिट्ठी लिख-लिख कर उसे बुला कर यहाँ ऐसा खुल कर खेलना, यह बेहयाई! ऐसी पापिन को गाँव में नहीं रहने दिया जा सकता।'

विनोदिनी को विश्वास था कि बिहारी का जवाब आज जरूर आएगा। लेकिन न आया। अपने मन में वह कहने लगी - 'बिहारी का मुझ पर अधिकार कैसा! मैं उसका हुक्म मानने क्यों गई? मैंने उसे यह क्यों समझने दिया कि वह जैसा कहेगा, सिर झुका कर मैं वही मान लूँगी। उससे तो मेरा महज उतने ही भर का नाता है, जितना-भर उसकी प्यारी आशा को बचाने की जरूरत है। मेरा अपना कोई पावना नहीं, दावा नहीं, मामूली दो पंक्तियों की चिट्ठी भी नहीं - मैं इतनी तुच्छ हूँ?' डाह के जहर से विनोदिनी का कलेजा भर गया।

काठ की मूरत-जैसी सख्त बनी विनोदिनी जब कमरे में बैठी थी, उसकी ददिया सास दामाद के यहाँ से लौटीं और आते ही उससे बोलीं - 'अरी मुँहजली, यह सब क्या सुन रही हूँ?'

विनोदिनी ने कहा - 'जो सुन रही हो, सब सच है।'

ददिया सास बोलीं - 'तो फिर इस कलंक का बोझा लिए यहाँ आने की क्या पड़ी थी - आई क्यों यहाँ?'

रुँधे क्रोध से विनोदिनी चुप बैठी रही।

वह बोलीं - 'मैं कहे देती हूँ, यहाँ तुम नहीं रह सकतीं। अपनी खोटी तकदीर, सब तो मर ही गए - वह दु:ख सह कर भी मैं जिंदा हूँ - तुमने हमारा सिर झुका दिया। तुम तुरंत यहाँ से चली जाओ।'

इतने में बिना नहाया-खाया महेंद्र रूखे-बिखरे बालों से वहाँ आ पहुँचा। तमाम रात जागता रहा था - आँखें लाल-लाल, चेहरा सूखा पड़ा। उसने संकल्प किया था कि मुँह अँधेरे ही आ कर वह विनोदिनी को साथ ले जाने की फिर से कोशिश करेगा। लेकिन पहले दिन विनोदिनी में अभूतपूर्व घृणा देख उसके मन में तरह-तरह की दुविधा होने लगी। धीरे-धीरे जब वेला चढ़ आई, गाड़ी का समय हो आया, तो स्टेशन के मुसाफिरखाने से निकल कर, मन से सारे तर्क-वितर्क दूर करके वह गाड़ी से सीधा विनोदिनी के यहाँ पहुँचा। हया-शर्म छोड़ कर दुस्साहस का काम करने पर आमादा होने से जो एक स्पर्धापूर्ण बल पैदा हो आता है, उसी बल के आवेश में महेंद्र ने एक उद्भ्रांत आनंद का अनुभव किया - उसका सारा अवसाद और दुविधा जाती रही। गाँव के कौतूहल वाले लोग उस उन्मत्त दृष्टि में उसे कागज के निर्जीव पुतले-से लगे। महेंद्र ने किसी तरफ नहीं देखा, सीधा विनोदिनी के पास जा कर बोला - 'विनोद, इस लोक निंदा के खुले मुँह में तुम्हें अकेला छोड़ जाऊँ, ऐसा कायर मैं नहीं हूँ। जैसे भी हो, तुम्हें यहाँ से ले ही जाना पड़ेगा। बाद में तुम मुझे छोड़ देना चाहो, छोड़ देना! मैं कुछ भी न कहूँगा। तुम्हारा बदन छू कर मैं कसम खाता हूँ, तुम जैसा चाहोगी, वही होगा। दया कर सको, तो जीऊँगा और न कर सको, तो तुम्हारी राह से दूर हट जाऊँगा। दुनिया में अविश्वास के काम मैंने बहुतेरे किए हैं। पर आज तुम मुझ पर अविश्वास न करो। अभी हम कयामत के मुँह पर खड़े हैं, यह धोखे का समय नहीं।'

विनोदिनी ने बड़े ही सहज भाव से दृढ़ हो कर कहा - 'मुझे अपने साथ ले चलो। गाड़ी है?'

महेंद्र ने कहा - 'है।'

विनोदिनी की सास ने बाहर आ कर कहा - 'महेंद्र, तुम मुझे नहीं पहचानते, मगर तुम हम लोगों के बिराने नहीं हो। तुम्हारी माँ राजलक्ष्मी हमारे ही गाँव की लड़की है, गाँव के रिश्ते से मैं उसकी मामी होती हूँ। मैं तुमसे पूछती हूँ, यह तुम्हारा क्या रवैया है! घर में तुम्हारी स्त्री है, माँ है और तुम ऐसे बेहया पागल बने फिरते हो? भले समाज में तुम मुँह कैसे दिखाओगे?'

महेंद्र निरुत्तर हो गया तो बुढ़िया बोली - 'जाना ही हो तो अभी चल दो, तुरंत। मेरे घर के बरामदे पर खड़े न रहो - पल-भर की भी देर न करो। अब।'

कह कर बुढ़िया भीतर गई और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया। बे-नहाई, भूखी, गंदे कपड़े पहने विनोदिनी खाली हाथों गाड़ी पर जा सवार हुई। जब महेंद्र भी चढ़ने लगा तो वह बोली - 'नहीं, स्टेशन बहुत करीब है, तुम पैदल चलो।'

महेंद्र ने कहा - 'फिर तो गाँव के सब लोग मुझे देखेंगे।'

विनोदिनी ने कहा - 'अब भी लाज रह गई है क्या?'

और गाड़ी का दरवाजा बंद करके विनोदिनी ने गाड़ीवान से कहा - 'स्टेशन चलो!'

गाड़ीवान ने पूछा - 'बाबू नहीं चलेंगे?'

महेंद्र जरा आगा-पीछा करने के बाद जाने की हिम्मत न कर सका। गाड़ी चल दी। गाँव की गैल छोड़ कर महेंद्र सिर झुकाए खेतों के रास्ते चला।

गाँव की बहुओं का नहाना-खाना हो चुका था। जिन प्रौढ़ाओं को देर से फुरसत मिली, केवल वही अँगोछा और तेल का कटोरा लिए बौराए आम के महमह बगीचे की राह घाट को जा रही थीं।

40.महेंद्र कहाँ चला गया, इस आशंका से राजलक्ष्मी ने खाना-सोना छोड़ दिया। संभव-असंभव सभी जगहों में साधुचरण उसे ढूँढ़ता फिरने लगा - ऐसे में विनोदिनी को ले कर महेंद्र कलकत्ता आया। पटलडाँगा के मकान में उसे रख कर वह अपने घर गया।

माँ के कमरे में जा कर देखा, कमरा लगभग अँधेरा है। लालटेन की ओट दी गई है। राजलक्ष्मी मरीज जैसी बिस्तर पर पड़ी है और पायताने बैठी आशा उनके पाँव सहला रही है। इतने दिनों के बाद घर की बहू को सास के पैरों का अधिकार मिला है।

महेंद्र के आते ही आशा चौंकी और कमरे से बाहर चली गई। महेंद्र ने जोर दे कर सारी दुविधा हटा कर कहा - 'माँ, मुझे यहाँ पढ़ने में सुविधा नहीं होती, इसलिए मैंने कॉलेज के पास एक डेरा ले लिया है। वहीं रहूँगा।'

बिस्तर के एक ओर का इशारा करके राजलक्ष्मी ने कहा - 'जरा बैठ जा।'

महेंद्र सकुचाता हुआ बिस्तर पर बैठ गया। बोलीं - 'जहाँ तेरा जी चाहे, तू रह। मगर मेरी बहू को तकलीफ मत देना!'

महेंद्र चुप रहा।

राजलक्ष्मी बोलीं - 'अपना भाग ही खोटा है, तभी मैंने अपनी अच्छी बहू को नहीं पहचाना।' कहते-कहते राजलक्ष्मी का गला भर आया - 'लेकिन इतने दिनों तक समझता, प्यार करके तूने उसे इस तकलीफ में कैसे डाला?'

राजलक्ष्मी से और न रहा गया। रो पड़ीं।

वहाँ से उठ भागे तो जी जाए महेंद्र। लेकिन तुरंत भागते न बना। माँ के बिस्तर के एक किनारे चुपचाप बैठा रहा।

बड़ी देर के बाद राजलक्ष्मी ने पूछा - 'आज रात तो यहीं रहेगा न?'

महेंद्र ने कहा - 'नहीं।'

राजलक्ष्मी ने पूछा - 'कब जाओगे?'

महेंद्र बोला - 'बस अभी।'

तकलीफ से राजलक्ष्मी उठीं। कहा - 'अभी? बहू से एक बार मिलेगा भी नहीं? अरे बेहया, तेरी बेरहमी से मेरा तो कलेजा फट गया।'

कह कर राजलक्ष्मी टूटी डाल-सी बिस्तर पर लेट गईं।

महेंद्र उठ कर बाहर निकला। दबे पाँव सीढ़ियाँ चढ़ कर वह अपने ऊपर के कमरे की ओर चला। वह चाहता नहीं था कि आशा से भेंट हो।

ऊपर पहुँचते ही उसकी नजर पड़ी, कमरे के सामने सायबान वाले बरामदे में आशा जमीन पर ही पड़ी थी। उसने महेंद्र के पैरों की आहट नहीं सुनी थी, अचानक उसे सामने देख कपड़े संभाल कर उठ बैठी। इस समय कहीं एक बार भी महेंद्र ने चुन्नी कह कर पुकारा होता, तो वह महेंद्र के सारे अपराधों को अपने सिर ले कर माफ की गई अपराधिनी की तरह उसके दोनों पैर पकड़ कर जीवन-भर का रोना रो लेती। लेकिन महेंद्र वह नाम ले कर न पुकार सका है।

आशा संकोची बैठी रही। महेंद्र ने भी कुछ न कहा। चुपचाप छत पर टहलने लगा। चाँद अभी तक उगा न था। छत के एक कोने में छोटे-से गमले के अंदर रजनीगंधा के दो डंठलों में दो फूल खिले थे। छत पर के आसमान के वे नखत, वह सतभैया, वह काल-पुरुष, उनके जाने कितनी संध्या के एकांत प्रेमाभिनय के मौन गवाह थे - आज वे सब टुकुर-टुकुर ताकते रहे।

महेंद्र सोचने लगा - इधर के इन कई दिनों की इस विप्लव-कथा को इस आसमान के अँधेरे से पोंछ कर ठीक पहले की तरह अगर खुली छत पर चटाई डाले आशा की बगल में उसी सदा की जगह में सहज ही बैठ पाता! कोई सवाल नहीं, कोई जवाबदेही नहीं; वही विश्वास, वही प्रेम, वही सहज आनंद! लेकिन हाय, यहाँ उतनी-सी जगह को फिर लौटने की गुंजाइश नहीं। छत की चटाई पर आशा के पास की जगह का वह हिस्सा महेंद्र ने खो दिया है। अब तक विनोदिनी का महेंद्र से एक स्वाधीन संबंध था, प्यार करने का पागल सुख था, लेकिन अटूट बंधन नहीं था। अब वह विनोदिनी को खुद समाज से छीन कर ले आया है, अब उसे कहीं भी रख आने की, कहीं भी लौटा आने की जगह नहीं रही - महेंद्र ही अब उसका एकमात्र अवलंब है। अब इच्छा हो या न हो, विनोदिनी का सारा भार उसे उठाना ही पड़ेगा।

लंबी उसाँस ले कर महेंद्र ने एक बार आशा की ओर देखा। मौन रुलाई से अपनी छाती भरे आशा तब भी उसी तरह बैठी थी - रात के अँधेरे ने माँ के दामन की तरह उसकी लाज और वेदना लपेट रखी थी।

न जाने क्या कहने के लिए महेंद्र अचानक आशा के पास आ कर खड़ा हुआ। सर्वांग की नसों का लहू आशा के कान में सिमटकर चीखने लगा - उसने आँखें मूंद लीं। महेंद्र सोच नहीं पाया कि वह आखिर क्या कहने आया था - कहने को उस पर है भी

क्या? लेकिन, बिना कुछ कहे अब लौट भी न सका। पूछा - 'कुंजियों का झब्बा कहाँ है?'

कुंजियों का झब्बा बिस्तर के नीचे था। आशा उठ कर कमरे में चली गई। महेंद्र उसके पीछे-पीछे गया। बिस्तर के नीचे से कुंजियाँ निकाल कर आशा ने बिस्तर पर रख दीं। झब्बे को ले कर महेंद्र अपने कपड़ों की अलमारी में एक-एक कुंजी लगा कर देखने लगा। आशा रह न सकी। बोल पड़ी - 'उस अलमारी की कुंजी मेरे पास न थी।'

कुंजी किसके पास थी, यह बात उसकी जबान से न निकल सकी, लेकिन महेंद्र ने समझा। आशा जल्दी-जल्दी कमरे के बाहर निगल गई; उसे डर लगा, कहीं महेंद्र के पास ही उसकी रुलाई न छूट पड़े। अंधेरी छत की दीवार के एक कोने की तरफ मुँह फेर कर खड़ी-खड़ी उफनती हुई वह रुलाई दबा कर रोने लगी।

लेकिन रोने का ज्यादा समय न था। एकाएक उसे याद आ गया, महेंद्र के खाने का समय हो गया। तेजी से वह नीचे उतर गई।

राजलक्ष्मी ने आशा से पूछा - 'महेंद्र कहाँ है, बहू?'

आशा ने कहा **-** 'ऊपर।'

राजलक्ष्मी- 'और तुम उतर आईं?'

आशा ने सिर झुका कर कहा - 'उनका खाना...'

राजलक्ष्मी - 'खाने का इंतजाम मैं कर रही हूँ - तुम जरा हाथ-मुँह धो लो और अपनी वह ढाका वाली साड़ी पहन कर मेरे पास आओ - मैं तुम्हारे बाल सँवार दूँ।'

सास के लाड़ को टालना भी मुश्किल था, लेकिन साज-शृंगार के इस प्रस्ताव से वह शर्मा गई। मौत की इच्छा करके भीष्म जैसे चुपचाप तीरों की वर्षा झेल गए थे, उसी प्रकार आशा ने भी बड़े धीरज से सास का सारा साज सिंगार स्वीकार कर लिया। बन-सँवर कर धीमे-धीमे वह ऊपर गई। झाँक कर देखा, महेंद्र छत पर नहीं था। कमरे के दरवाजे से देखा, वह कमरे में भी न था - खाना यों ही पड़ा था।

कुंजी नहीं मिली, सो अलमारी तोड़ कर महेंद्र ने कुछ जरूरी कपड़े और काम की किताबें निकाल लीं और चला गया।

अगले दिन एकादशी थी। नासाज और भारी-भारी-सी राजलक्ष्मी बिस्तर पर लेटी थीं। बाहर घटाएँ घिरी थीं। आंधी-पानी के आसार। आशा धीरे-धीरे कमरे में गई। धीरे से उनके पैरों के पास बैठ कर बोली - 'तुम्हारे लिए दूध और फल ले आई हूँ माँ, चलो, खा लो!'

करुणा-मूर्ति बहू की सेवा की चेष्टा, जिसकी वह आदी न थी, देख कर राजलक्ष्मी की सूखी आँखें उमड़ आईं। वह उठ बैठीं। आशा ने अपनी गोद में खींच कर उसके गीले गाल चूमने लगीं। पूछा - 'महेंद्र कर क्या रहा है, बहू!'

आशा लजा गई। धीमे से कहा - 'वे चले गए।'

राजलक्ष्मी - 'चला गया? मुझे तो पता भी न चला।'

आशा बोली - 'वे कल रात ही चले गए।'

सुनते ही राजलक्ष्मी की कोमलता मानो काफूर हो गई; बहू के प्रति उनके स्नेह-स्पर्श में रस का नाम न रह गया। आशा ने एक मौन लांछन का अनुभव किया और सिर झुकाए चली गई।

41.रात को जब उसे पटलडाँगा के डेरे पर छोड़ कर महेंद्र अपने कपड़े और किताबें लाने घर चला गया, तो कलकत्ता के अविश्राम जन-स्रोत की हलचल में अकेली बैठी विनोदिनी अपनी बात सोचने लगी। दुनिया में पनाह की जगह काफी तो उसे कभी भी न थी, इतनी जरूर थी कि अगर एक ओर गरम हो जाए, तो दूसरी तरफ करवट बदल कर सो सके। आज लेकिन निर्भर करने की जगह निहायत सँकरी हो गई थी। जिस नाव पर सवार हो कर वह प्रवाह में बह चली है, उसके दाएँ-बाएँ किसी भी तरफ जरा झुक जाने से पानी में गिर पड़ने की नौबत। लिहाजा बड़ी सावधानी से पतवार पकड़नी थी - जरा-सी चूक, जरा-सा हिलना-डुलना भी मुहाल। ऐसी हालत में भला किस औरत का कलेजा नहीं काँपता। पराए मन को मुट्ठी में रखने के लिए जिस चुहल की जरूरत है, जितनी ओट चाहिए, इस सँकरेपन में उसकी गुंजाइश कहाँ! महेंद्र के एकबारगी आमने-सामने रह कर सारी जिंदगी बितानी पड़ेगी। फर्क इतना ही है कि महेंद्र के किनारे लगने की गुंजाइश है, विनोदिनी के लिए वह भी नहीं।

अपनी इस असहाय अवस्था को वह जितना ही समझने लगी, उतना ही उसे बल मिलने लगा। कोई-न-कोई उपाय करना ही पड़ेगा, ऐसे काम नहीं चलने का।

बिहारी को प्रेम-निवेदित करने के दिन से ही विनोदिनी के धीरज का बाँध टूट गया था। अपने जिस उमगे हुए चुंबन को वह उसके पास लौटा कर ले आई, संसार में और किसी के पास उसे उतार कर नहीं रख सकती। पूजा के चढ़ावे की तरह देवता के लिए उसे रात-दिन ढोने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। उसका मन कभी हथियार डाल देना नहीं जानता, निराशा वह नहीं मानती। उसका मन बार-बार उससे कह रहा था - 'यह पूजा बिहारी को कबूल करनी ही पड़ेगी।'

उसके इस अदम्य प्रेम से उसकी आत्म-रक्षा की आकांक्षा आ कर मिल गई। बिहारी के सिवाय उसके पास और कोई चारा नहीं। महेंद्र को उसने अच्छी तरह समझ लिया था। उस पर टिकना चाहो तो वह भार नहीं सह सकता - छोड़ने पर ही उसे पाया जा सकता है - पकड़ना चाहो कि भाग खड़ा होना चाहता है। लेकिन औरत के लिए जिस एक निश्चिंत, विश्वासी सहारे की नितांत आवश्यकता है, वह सहारा बिहारी ही दे सकता है। अब बिहारी को छोड़ने से उसका काम हर्गिज नहीं चल सकता।

यह सोच कर उसने खिड़की खोली और गैस की रोशनी से दमकते शहर की ओर देखने लगी, बिहारी अभी साँझ को इस शहर में ही है, यहाँ से एकाध रास्ते, दो-चार गलियाँ पार करके अभी-अभी उसके दरवाजे पर मजे में पहुँचा जा सकता है। द्वार के बाद ही नल वाला छोटा-सा अँगना, वही सीढ़ी, वही सजा-सजाया कमरा - सन्नाटे में बिहारी आराम-कुर्सी पर अकेला बैठा - शायद सामने खड़ा ब्राह्मण का वह लड़का, गोल-मटोल, गोरा-गोरा सुंदर-सा वह लड़का नजर गड़ाये तस्वीरों वाली किसी किताब के पन्ने पलट रहा हो - एकाएक सारे चित्र को सुधि में ला कर स्नेह से, प्रेम से विनोदिनी का सर्वांग पुलकित हो उठा। जी चाहे तो अभी वहाँ पहुँच जाया जा सकता है। यह सोच कर विनोदिनी इस इच्छा को छाती से लगाए खेलने लगी। पहले की बात होती, तो शायद वह अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए लपक पड़ती, लेकिन अब आगे-पीछे बहुत सोचना पड़ता है। अब तो महज वासना पूरी करने का सवाल नहीं रहा, उद्देश्य की पूर्ति करनी है। विनोदिनी सोचने लगी - 'पहले यह देखूँ कि बिहारी जवाब क्या देता है, उसके बाद तय करूँगी कि किस रास्ते जाना है।' कुछ समझे बिना बिहारी को तंग करने के लिए जाने की हिम्मत न पड़ी।

इसी तरह सोचते-विचारते जब रात के नौ बज गए तो महेंद्र लौट कर आ गया। ये कई दिन उसे भूखे-प्यासे, बदपरहेजी और उत्तेजना में कटे। आज कामयाब हो कर विनोदिनी को वह अपने डेरे में ले आया; इसीलिए थकावट से मानो चूर-चूर हो गया।

दुनिया से, अपने मन की हालत से लड़ने लायक बल उसमें नहीं रह गया था। भारों से लदे उसके भावी जीवन की थकावट ने मानो पहले से ही उसे दबोच लिया।

बाहर से दरवाजे के कड़े खटखटाने में महेंद्र को बड़ी शर्म लगने लगी। जिस पागलपन में दुनिया का कोई खयाल ही न किया, वह पागलपन कहाँ! रास्ते के अचीन्हे-अजाने लोगों की नजर के सामने भी उसका सर्वांग सकुचा क्यों रहा है?

अंदर नया नौकर सो गया था। दरवाजा खुलवाने के लिए बड़ा हंगामा करना पड़ा। अपरिचित नए डेरे के अँधेरे में पहुँचाने पर महेंद्र का मन ढीला पड़ ही गया। माँ का लाड़ला महेंद्र जिन विलास-उपकरणों - पंखे, कुर्सी, सोफे - का आदी रहा है, उसका अभाव यहाँ साफ दिख गया। इन कमी-खामियों को मिटाना ही पड़ेगा। डेरे के सारे इंतजाम का भार उसी पर था। महेंद्र ने आज तक कभी अपने या किसी के आराम के फिक्र नहीं की - आज से उसे एक नए और अधूरे संसार का तीली-तीली भार उठाना। सीढ़ी पर एक ढिबरी धुआँ उगलती हुई टिमटिमा रही थी; वहाँ के लिए एक लैंप लाना पड़ेगा। बरामदे से सीढ़ी को जाने वाला रास्ता नल के पानी से चिपचिपाता रहता, मिस्त्री बुला कर सीमेंट से उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। सड़क की तरफ के दो कमरे जूतों की दुकान वालों के जिम्मे थे, उन्होंने अभी तक उन्हें खाली नहीं किया - मकान-मालिक से इसके लिए लड़ेगा। सारा काम खुद ही करना पड़ेगा - लम्हे-भर में यह बात दिमाग में आई और उसकी थकावट के भार पर और भी बोझ लद गया।

सीढ़ी पर कुछ देर खड़े रह कर महेंद्र ने अपने को सँभाल लिया - विनोदिनी के प्रति जो प्रेम था, उसे उभारा। अपने-आपको समझाया कि आज तक सारी दुनिया को भूल कर उसने जो चाहा था, वह मिल गया - दोनों के बीच अब अड़चन की कोई दीवार नहीं - आज तो महेंद्र की खुशी का दिन है। कोई अड़चन नहीं थी - लेकिन सबसे बड़ी अड़चन यही थी- आज वह आप ही अपनी बाधा था।

रास्ते में महेंद्र को देख कर विनोदिनी ध्यान के आसन से उठी। कमरे में रोशनी जलाई। सिलाई का काम ले कर नजर झुकाए बैठ गई। सिलाई उसकी एक ओट थी। उसकी आड़ में मानो उसका एक आश्रय था।

कमरे में आ कर महेंद्र बोला - 'यहाँ, जरूर तुम्हें बड़ी असुविधा हो रही है, विनोद!'

अपनी सिलाई में लगी-लगी बोली - 'बिलकुल नहीं।'

महेंद्र बोला - 'दो ही तीन दिनों में मैं सारा सामान ले आऊँगा। कुछ दिन तुम्हें थोड़ी तकलीफ होगी।'

विनोदिनी बोली - 'नहीं, वह न होगा - तुम अब एक भी सामान और न लाओ - जो है, वही मेरी जरूरत से कहीं ज्यादा है।'

महेंद्र ने कहा **-** 'मैं अभागा भी क्या उससे कहीं ज्यादा में हूँ?'

विनोदिनी - 'अपने को उतना ज्यादा लगाना ठीक नहीं, कुछ विनय रहनी चाहिए।'

दीये की जोत में सूने कमरे में सिर झुकाए विनोदिनी की उस आत्म-तल्लीन मूर्ति को देख कर महेंद्र के मन में फिर उसी मोह का संचार हुआ।

घर में होता तो दौड़ कर विनोदिनी के पैरों में गिर पड़ता - मगर यह घर तो था नहीं, इसलिए वैसा न कर सका। आज विनोदिनी बड़ी बेचारी थी, बिलकुल महेंद्र की मुट्ठी में- आज अपने को संयत न रखे तो बड़ी कायरता होगी।

विनोदिनी ने कहा - 'अपने किताब-कपड़े यहाँ क्यों ले आए?'

महेंद्र ने कहा - 'उन्हें मैं अपने लिए जरूरी सामान मानता हूँ- वे कहीं ज्यादा वाले वर्ग में नहीं हैं...'

विनोदिनी - 'मालूम है, मगर यहाँ क्यों?'

महेंद्र - 'ठीक है, आवश्यक चीजें यहाँ नहीं सोहतीं - विनोद, इन किताबों-विताबों को उठा कर रास्ते पर फेंक देना, मैं चूँ भी न करूँगा - केवल उनके साथ मुझे भी मत उठा फेंकना।'

इतना कह कर महेंद्र थोड़ा खिसक आया और कपड़ों में बँधी किताबों की गाँठ को विनोदिनी के पैरों के पास रख दिया।

उसी गंभीर भाव से सिलाई करती हुई विनोदिनी बोली - 'भाई साहब, तुम यहाँ नहीं रहोगे।'

अपने उठते हुए आग्रह पर चोट पा कर महेंद्र व्याकुल हो उठा। गदगद स्वर में बोला - 'क्यों, तुम मुझे दूर क्यों रखना चाहती हो? तुम्हारे लिए सब-कुछ छोड़ने का यही पुरस्कार है?'

विनोदिनी - 'अपने लिए मैं तुम्हें सब-कुछ न छोड़ने दूँगी।'

महेंद्र कह उठा- 'अब वह तुम्हारे हाथ की बात नहीं - सारी दुनिया मेरी चारों तरफ से खिसक पड़ी है - बस, एक तुम हो - तुम विनोद...'

कहते-कहते विह्वल हो कर महेंद्र लौट पड़ा और विनोदिनी के पैरों को पकड़ कर उन्हें बार-बार चूमने लगा।

पाँव छुड़ा कर विनोदिनी उठ खड़ी हुई। बोली - 'याद नहीं, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी?'

सारी शक्ति लगा कर महेंद्र ने अपने को जब्त किया। कहा - 'याद है मैंने शपथ ली थी कि तुम जो चाहोगी वही होगा, मैं कभी कोई एतराज न करूँगा। उस शपथ को मैं रखूँगा। बताओ, मुझे क्या करना है?'

विनोदिनी - 'तुम अपने घर पर रहोगे।'

महेंद्र - 'एक मैं ही क्या तुम्हारी अनिच्छा की वस्तु हूँ, विनोद! अगर यही बात है तो तुम मुझे खींच क्यों लाई? जो तुम्हारे भोग की चीज न थी, उसके शिकार की क्या जरूरत पड़ी थी? सच-सच बताओ, मैंने स्वेच्छा से तुम्हें पकड़ लिया या तुमने जान कर मुझे पकड़ा? मुझसे तुम इस तरह खिलवाड़ करोगी और यह भी मुझे सहना पड़ेगा? फिर भी अपनी शपथ मैं रखूँगा, जिस घर को मैं लात मार कर आया, वहीं जा कर रहूँगा।'

विनोदिनी जमीन पर बैठी फिर से सिलाई में जुट गई।

कुछ देर तक उसके मुँह की ओर एकटक देख कर महेंद्र बोल उठा - 'बेरहम! निर्दयी हो तुम, विनोद! मैं बड़ा ही अभागा हूँ कि मैंने तुम्हें प्यार किया।'

विनोदिनी से सिलाई में कोई गलती हो गई। रोशनी के पास बड़ी मेहनत से वह धागे को खोजने लगी। महेंद्र के जी में आ रहा था कि विनोदिनी के संगदिल को अपनी मुट्ठी में ले कर पीस डाले। उसकी इस मौन निर्दयता और अडिग उपेक्षा को धक्का दे कर बाहु-बल से शिकस्त देने को जी चाह रहा था।

महेंद्र बाहर निकला और फिर-फिर लौट आया। बोला - 'मैं न रहूँगा तो यह तुम्हारी हिफाजत कौन करेगा?'

विनोदिनी - 'उसकी तो तुम फिक्र ही न करो। बुआ ने उस छमिया नौकरानी को जवाब दे दिया है। आज से वह यहीं रहेगी। अंदर से घर बंद करके हम दोनों मजे में यहाँ रह लेंगी।'

भीतर-भीतर उस पर जितना ही गुस्सा आने लगा, विनोदिनी के लिए उसका उतना ही जबरदस्त खिंचाव होने लगा। उस टस से मस न होने वाली मूरत को वज्र की ताकत से छाती से चिपका कर चूर-चूर कर देने की इच्छा होने लगी। अपनी उस प्रबल इच्छा के हाथों से छुटकारा पाने के लिए महेंद्र दौड़ कर कमरे से बाहर चला गया।

रास्ते से जाते हुए महेंद्र प्रतिज्ञा करने लगा, उपेक्षा के बदले में वह विनोदिनी की उपेक्षा ही करेगा। संसार में महेंद्र के सिवाय अब विनोदिनी का और कोई सहारा नहीं, ऐसी हालत में भी इस निडरता और अडिगता से उसे ठुकराना - किसी मर्द के नसीब में ऐसा भी अपमान कभी हुआ है। महेंद्र का गर्व चूर-चूर हो कर भी मटियामेट न हुआ - पीड़ित और दलित होता रहा। वह सोचने लगा - 'ऐसा नाचीज हूँ मैं! मेरे लिए ऐसी स्पर्धा उसके मन में कैसे आई? मेरे सिवाय इस समय उसका और है कौन?'

सोचते-सोचते अचानक याद आ गया - 'बिहारी'। सहसा उसके कलेजे का रक्त-प्रवाह थम गया। बिहारी को ही उसने अपना भरोसा माना है - मैं तो उपलक्ष्य-मात्र हूँ, उसकी सीढ़ी हूँ, पैर रखने की, कदम-कदम पर ठोकर मारने की जगह। इसी साहस पर मेरी ऐसी अवज्ञा।

महेंद्र को शंका हुई कि विनोदिनी से बिहारी की चिट्ठी-पत्री चलती होगी और इसे कोई भरोसा मिला होगा।

सोचा और उसी दम वह बिहारी के घर की ओर चल पड़ा।जब उसके घर पहुँचा, तो रात नहीं के बराबर बाकी रह गई थी। बड़ी मुश्किल से दरवाजा पीटते-पीटते बैरे ने दरवाजा खोल कर बताया - 'बाबूजी घर पर नहीं हैं।'

महेंद्र चौंक उठा। सोचा, 'मैं इधर नासमझ की तरह मारा-मारा फिर रहा हूँ और इस मौके का फायदा उठा कर बिहारी विनोदिनी के पास गया है। इसीलिए उसने इस बेरहमी से मेरा अपमान किया और मैं भी मार कर भगाए गए गदहे की तरह भाग आया।'

महेंद्र ने उस जाने-पहचाने पुराने बैरे से पूछा -'भज्जो, मालिक तुम्हारे घर से किस वक्त निकले हैं?'

भज्जो ने कहा - 'जी, चार-पाँच दिन हो गए। पछाँह की ओर कहीं घूमने गए हैं।'

महेंद्र की मानो जान में जान आई। जी में आया, 'अब आराम से थोड़ी देर सो लूँ। तमाम रात भटकते रहने की अब हिम्मत नहीं है।'

वह ऊपर गया और बिहारी के कमरे में सोफे पर सो गया।

जिस रात महेंद्र ने बिहारी के घर जा कर ऊधम मचाया, उसके दूसरे ही दिन बिना कुछ तय किए बिहारी न जाने कहाँ चला गया। उसने सोचा, 'यहाँ रहने से जाने कब अपने दोस्त से ऐसा घिनौना संघर्ष हो जाए कि जन्म-भर पछताना पड़े।'

दूसरे दिन महेंद्र जगा तो ग्यारह बज चुके थे। उठते ही उसकी निगाह सामने की तिपाई पर पड़ी। देखा, बिहारी का एक पत्र पड़ा था। ठिकाने के हरफ विनोदिनी के थे। लिफाफा पत्थर के पेपर-वेट से दबा था। महेंद्र ने झपट कर उसे उठा लिया। लिफाफा खोला नहीं गया था। प्रवासी बिहारी के इंतजार में बंद पड़ा था। काँपते हाथों से महेंद्र ने उसे फाड़ डाला और पढ़ने लगा। यही चिट्ठी विनोदिनी ने अपने गाँव से बिहारी को भेजी थी, जिसका उसे कोई जबाव नहीं मिला था।

चिट्ठी का एक-एक अक्षर महेंद्र को काटने लगा। छुटपन से सदा ही बिहारी महेंद्र की ही ओट में पड़ा था। प्रेम-स्नेह के नाते महेंद्र देवता के गले की उतरी माला ही उसे नसीब हुआ करती। आज महेंद्र स्वयं प्रार्थी तथा बिहारी-विमुख था, फिर भी विनोदिनी ने महेंद्र को ठुकरा कर बिहारी को अपनाया। विनोदिनी की चिट्ठियाँ महेंद्र को भी दो-चार मिली थीं, मगर इसके मुकाबले वे निरी नकली हैं, नासमझ को फुसलाने का बहाना!

अपना नया ठिकाना बताने के लिए महेंद्र को गाँव के डाकखाने में भेजने की व्याकुलता महेंद्र को याद आई और अब उसका कारण उसकी समझ में आया। विनोदिनी बिहारी के पत्र का बेसब्री से इंतजार कर रही है।

जैसा कि पहले किया करता था, मालिक की गैरहाजिरी में भज्जो ने महेंद्र को बाजार से ला कर चाय-नाश्ता दिया। नहाना महेंद्र भूल गया। तभी जैसे रेत पर राही जल्दी-जल्दी कदम उठा कर चलता है, उसी तरह विनोदिनी की जलाने वाली चिट्ठी

पर वह तेजी से नजर दौड़ाने लगा। वह प्रतिज्ञा करने लगा कि विनोदिनी से अब हर्गिज भेंट न करूँगा। फिर मन में आया, 'और दो-एक दिन में जब उसे बिहारी का जवाब न मिलेगा, तो वह बिहारी के यहाँ आएगी और तब सारा हाल जान कर उसे तसल्ली होगी।' यह संभावना महेंद्र के लिए असह्य हो गई।

आखिर उस पत्र को अपनी जेब में डाल कर वह पटलडाँगा पहुँचा। महेंद्र की यह गत देख कर विनोदिनी को दया आ गई। वह समझ गई - हो न हो तमाम रात वह रास्ते के ही चक्कर काटता रह गया है। पूछा - 'रात घर नहीं गए?'

महेंद्र ने कहा - 'नहीं।'

विनोदिनी ने परेशान हो कर पूछा - 'अभी तक खाया-पिया भी नहीं क्या?' कह कर सेवा-परायणा विनोदिनी ने उसके खाने का इंतजाम करना चाहा।

महेंद्र बोला - 'रहने दो, मैं खा चुका हूँ।'

विनोदिनी - 'कहाँ खाया?'

महेंद्र - 'बिहारी के यहाँ।'

पल भर के लिए विनोदिनी का चेहरा पीला पड़ गया। जरा देर चुप रह कर उसने अपने को सँभाला और पूछा - 'बिहारी बाबू कुशल से तो हैं न?'

महेंद्र बोला - 'कुशल से ही है। वह तो पछाँह चला गया।' महेंद्र ने कुछ इस लहजे से कहा मानो बिहारी आज ही गया है।

विनोदिनी का चेहरा फिर एक बार पीला पड़ गया। फिर अपने को सँभाल कर बोली - 'ऐसा डाँवाडोल आदमी तो मैंने नहीं देखा। उन्हें हम लोगों का सारा हाल मालूम पड़ गया है? खूब नाराज हो गए हैं क्या?'

महेंद्र - 'नाराज न हुआ होता तो इस शिद्दत की गर्मी में भी कोई भला आदमी पछाँह घूमने जाता है!'

विनोदिनी - 'मेरे बारे में कुछ कहा?'

महेंद्र - 'कहने को क्या है। यह उसकी चिट्ठी लो!'

चिट्ठी उसके हाथ में दे कर महेंद्र तीखी नजर से उसके मुँह के भाव पर गौर करने लगा।

विनोदिनी ने झट से चिट्ठी ले कर देखी, खुली थी वह। लिफाफे पर उसी के हरफ में बिहारी का नाम लिखा था। अंदर से चिट्ठी निकाली। वह उसी की लिखी वही चिट्ठी थी। उलट कर देखा, बिहारी का जवाब तो कहीं न मिला।

थोड़ी देर चुप रह कर विनोदिनी ने पूछा - 'यह चिट्ठी तुमने पढ़ी है?'

विनोदिनी के चेहरे के भाव से महेंद्र को डर लगा। वह झूठ बोल गया - 'नहीं।'

विनोदिनी ने चिट्ठी फाड़ डाली। उसके टुकड़े-टुकड़े किए और खिड़की से बाहर फेंक दिए।

महेंद्र बोला - 'मैं घर जा रहा हूँ।'

विनोदिनी ने कोई जवाब न दिया।

महेंद्र - 'तुमने जैसा चाहा है, मैं वैसा ही करूँगा। सात दिन मैं वहीं रहूँगा। कॉलेज आते समय रोज नौकरानी की मार्फत यहाँ का सारा प्रबंध कर जाया करूँगा। तुमसे भेंट करके तुम्हें आजिज न करूँगा।'

विनोदिनी महेंद्र की कोई बात सुन भी पाई या नहीं, कौन जाने, मगर उसने कोई जवाब न दिया। खुली खिड़की से बाहर अँधेरे आसमान को ताकती रही।

अपनी चीजें उठा कर महेंद्र वहाँ से निकल पड़ा।

सूने कमरे में विनोदिनी बड़ी देर तक काठ की मारी-सी बैठी रही और अंत में मानो जी-जान से अपने को सजग करने के लिए छाती का कपड़ा फाड़ कर अपने पर बेरहमी से चोट करने लगी।

आवाज पा कर नौकरानी दौड़ी आई - 'दादी जी, क्या कर रही हैं?'

'तू चली जा यहाँ से'- डपट कर विनोदिनी ने छमिया को कमरे से बाहर निकाल दिया। उसके बाद जोरों से किवाड़ बंद करके दोनों हाथों से मुट्ठी बाँध कर जमीन पर लोट गई - तीर खाए जानवर जैसी रोने लगी। अपने को इस तरह विक्षत और श्रांत बना कर विनोदिनी रात-भर खिड़की के पास नीचे पड़ी रही।

सुबह जैसे ही सूरज की किरणें कमरे में आईं, विनोदिनी को अचानक ऐसा लगा, बिहारी गया नहीं होगा, कहीं उसे चकमा देने के लिए महेंद्र ने यों ही झूठ कह दिया हो। उसने छमिया को बुला कर कहा - 'छम्मी, तू फौरन जरा बिहारी भाई साहब के यहाँ जा उन लोगों का हाल पूछ आ।'

छमिया कोई घंटे-भर बाद लौट कर बोली - 'उनके घर के सारे खिड़की-दरवाजे बंद हैं। दरवाजा पीटने पर अंदर से बैरा निकला। बोला - 'वे घर पर नहीं हैं। वे घूमने के लिए पछाँह गए हैं'।'

विनोदिनी के संदेह का कोई कारण ही न रहा।

42.'महेंद्र रात में ही उठ कर चला गया,' यह सुन कर राजलक्ष्मी बहू पर बहुत नाराज हुईं। उन्होंने समझा बहू की लानत-मलामत से ही वह चला गया। उन्होंने आशा से पूछा - 'महेंद्र रात चला क्यों गया?'

आशा ने सिर झुका कर कहा - 'मालूम नहीं, माँ!'

राजलक्ष्मी को लगा, यह भी रूठने की बात है। आजिजी से कहा - 'तुम्हें नहीं मालूम तो किसे मालूम होगा? कुछ कहा था उससे?'

आशा ने सिर्फ 'नहीं' कहा।

राजलक्ष्मी को यकीन न आया। ऐसा भी हो सकता है भला। पूछा - 'कल वह गया कब?'

सकुचाकर आशा बोली - 'नहीं जानती।'

राजलक्ष्मी ने जोर दे कर यह भी कह दिया कि आशा के आचरण और स्वभाव की वजह से महेंद्र घर से निकल गया। सिर झुका कर यह फटकार झेलती हुई आशा अपने कमरे में जा कर रोने लगी। अपने मन में सोचने लगी, 'पता नहीं क्यों कभी मेरे स्वामी ने मुझे प्यार किया था और यह भी नहीं जानती कि उसका वह प्यार मैं फिर कैसे पा सकूँगी। जो प्यार करता है, उसे कैसे खुश करना चाहिए, हृदय आप ही यह बता देता है, लेकिन जो प्यार नहीं करता, उसके हृदय को कैसे पाया जा सकता है, आशा यह क्या जाने। जो आदमी किसी और को प्यार करता है, उससे सुहाग पाने-जैसी शर्मनाक कोशिश वह कैसे करे?'

शाम को परिवार के ज्योतिषी जी और उनकी बहन आई। बेटे की ग्रहशांति के लिए राजलक्ष्मी ने उन्हें बुलवाया था। बहू की जन्म-कुंडली और हाथ देखने का राजलक्ष्मी ने उनसे अनुरोध किया, और इसके लिए आशा को वहाँ बुलवाया गया। दूसरों के आगे अपनी बदनसीबी की चर्चा के संकोच से कुंठित हो कर आशा किस तरह से अपना हाथ निकाल कर बैठी कि इतने में अपने कमरे के पास वाले अँधेरे बरामदे में राजलक्ष्मी को जूतों की हल्की-सी आहट सुनाई दी - कोई जैसे दबे पाँव जा रहा हो। राजलक्ष्मी ने पूछा - 'कौन?'

पहले तो कोई जवाब न मिला। फिर आवाज दी- 'कौन है?' इस पर महेंद्र चुपचाप कमरे में आया।

आशा खुश तो क्या होती, महेंद्र की लज्जा देख कर लज्जा से उसका हृदय भर गया। अब महेंद्र को अपने घर में ही चोर की तरह आना पड़ा है। ज्योतिषी जी और उनकी बहन के रहने से उसे और भी शर्म आई। दुनिया-भर के सामने अपने स्वामी के लिए लाज ही आशा को दु:ख से बड़ी हो उठी थी। और अब राजलक्ष्मी ने धीमे से कहा - 'बहू, पार्वती से कह दो, महेंद्र का खाना लगा दो,' तो आशा बोली - 'न, मैं ही ले आती हूँ।'

घर की दास-दासियों से भी वह महेंद्र को ढँके रखना चाहती।

इधर ज्योतिषी जी और उनकी बहन को देख कर महेंद्र मन-ही-मन बड़ा नाराज हुआ। उसकी माँ और स्त्री जंतर-मंतर से उसे वश में लाने के लिए इन अशिक्षित मूर्खों के साथ बेहयाई से साजिश कर रही हैं, यह महेंद्र को सहन नहीं हुआ। इस पर जब ज्योतिषीजी की बहन ने जरूरत से ज्यादा शहद-सने स्वर में पूछा - 'कुशल तो है, बेटे!' तो उससे वहाँ बैठा न गया। उनके कुशल-प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही बोला - 'माँ, मैं जरा ऊपर चलता हूँ।'

माँ ने समझा, महेंद्र शायद एकांत में बहू से बात करना चाहता है। बेहद खुश हो कर खुद रसोई में गई। जा कर आशा से कहा - 'जाओ, जल्दी से ऊपर जाओ, महेंद्र को शायद कुछ काम है।'

आशा धड़कते हृदय और सकुचाते कदमों से ऊपर गई। सास के कहने से उसने यह समझा कि महेंद्र ने शायद उसे बुलाया है। लेकिन अचानक ही उससे कमरे में जाते न बना, वह पहले अँधेरे दरवाजे की आड़ से महेंद्र को देखने लगी।

महेंद्र बड़े ही सूने मन से फर्श के बिस्तर पर तकिए के सहारे लेटा-लेटा छत के शहतीर गिन रहा था। वही महेंद्र तो था। सारा कुछ वही मगर कितना परिवर्तन!

आशा अँधेरे में खड़ी-खड़ी जितना ही महेंद्र को देखने लगी, उतना ही उसके मन में होने लगा कि महेंद्र अभी-अभी उसी विनोदिनी के यहाँ से आया है, उसके अंगों में उसी विनोदिनी का स्पर्श है, आँखों में उसी की मूरत, कानों में उसी विनोदिनी की आवाज, मन में उसी विनोदिनी की वासना घुली-मिली है। आशा इस महेंद्र को अपनी पवित्र भक्ति कैसे दे, कैसे एक मन से कहे कि आओ, मेरे हृदय में विराजो।

विनोदिनी का महेंद्र मानो आशा के लिए पराया पुरुष हो। इतने में छत के लोहे-लक्कड़ से महेंद्र की अनमनी नजर सामने की दीवार की तरफ उतरी। उसकी नजर का अनुसरण करते हुए आशा ने देखा, दीवार पर महेंद्र की तस्वीर के पास ही आशा का एक फोटो लटक रहा है। उसके जी में आया, दामन से उसे ढँक दे। अभ्यासवश क्यों वह आज तक उसकी नजर में न आया, क्यों अब तक उसने उतार नहीं फेंका, यही सोच कर वह अपने को धिक्कारने लगी। उसे लगा, महेंद्र मन-ही-मन हँस रहा है। अंत में आजिज आए महेंद्र की नजर दीवार से नीचे उतर आई। अपनी मूर्खता मिटाने के लिए आशा आजकल साँझ को काम-काज और सास की सेवा से फुरसत पाते ही काफी रात तक लिखा-पढ़ी करती थी। उसके पढ़ने-लिखने की कापी-किताबें कमरे में एक तरफ रखी हुई थीं। महेंद्र ने उनमें से एक कापी उठा ली और देखने लगा। आशा की ख्वाहिश होने लगी कि चीख कर उसे छीन लाए। अपने कच्चे हरफ पर महेंद्र की व्यंग्य दृष्टि की कल्पना करके वह एक पल-भर भी और न खड़ी रह सकी। तेजी से नीचे उतर गई - आहट छिपाने की भी चेष्टा न रही।

महेंद्र का खाना तैयार था। राजलक्ष्मी सोच रही थी, 'महेंद्र बहू से हँसी-दिल्लगी कर रहा होगा,' लिहाजा भोजन ले जा कर बीच ही में रुकावट डालने को जी नहीं चाह रहा था। आशा को उतरते देख खाने की जगह पर थाली रख कर उन्होंने महेंद्र को खबर दी। महेंद्र खाने जाने को उठा ही था कि आशा दौड़ कर कमरे में गई और दीवार से अपनी तस्वीर उतार कर छत की दीवार के बाहर फेंक दी और अपनी कापी-किताबें उठा ले गई।

खा-पी कर महेंद्र कमरे में आ बैठा। राजलक्ष्मी ने लेकिन बहू को आस-पास कहीं नहीं पाया। अंत में रसोई में जा कर देखा, आशा उनके लिए दूध उबाल रही थी। कोई जरूरत न थी इसकी, क्योंकि जो नौकरानी रोज दूध उबाला करती थी, वह पास ही थी और आशा के इस निरर्थक उत्साह पर ऐतराज कर रही थी। पानी डाल कर

जितना दूध वह रोज गायब करती थी, आज वह हाथ से जाता रहा, इससे वह अकुला रही थी।

राजलक्ष्मी बोलीं- 'अरे, यहाँ क्यों बहू, ऊपर जाओ!' आशा ने ऊपर जा कर सास के कमरे में पनाह ली। बहू के इस व्यवहार से राजलक्ष्मी नाराज हुईं। सोचा, 'उस मायाविनी के फंदे से निकल कर महेंद्र घड़ी-भर के लिए घर भी आया, तो नाराज हो कर, रूठ कर बहू फिर उसे घर से निकालने को तैयार! और विनोदिनी के फंदे में जो महेंद्र पड़ा वह ही तो आशा के ही चलते। मर्द तो गलत राह पर चलने के लिए पाँव बढ़ाए ही रहता है। औरत का कर्तव्य है, छल-बल कौशल से उसे सही रास्ते पर रखे।'

राजलक्ष्मी ने फटकार बताई - 'यह तुम्हारा क्या रवैया है, बहू! खुश-किस्मती से स्वामी कहीं घर आ गए तो मुँह लटकाए तुम इस-उस कोने में क्यों छिपी फिरती हो?'

खुद को कसूरवार समझ अंकुश खाए हुए किसी तरह आशा ऊपर गई और मन को आगा-पीछा करने का जरा भी मौका न दे कर वह एक साँस में कमरे के अंदर चली गई। दस बज चुके थे। उस समय महेंद्र बिस्तर के पास खड़ा बेमतलब बड़ी देर से चिंतित-सा मच्छरदानी झाड़ रहा था। उसके मन में विनोदिनी के लिए एक तीखा अभियान हो गया था। वह मन में सोच रहा था कि विनोदिनी ने आखिर मुझे ऐसा खरीदा हुआ गुलाम समझ रखा है कि मुझे आशा के पास भेजते हुए उसके जी में जरा भी आशंका न हुई। कहीं मैं आज से आशा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करूँ तो वह किसके सहारे इस दुनिया में खड़ी होगी? उसने सोचा वह विनोदिनी से अपनी उपेक्षा का बदला जरूर लेगा।

आशा ने जैसे ही कमरे में कदम रखा, महेंद्र का अनमना हो कर मच्छरदानी झाड़ना बंद हो गया। एक समस्या हुई कि आशा से वह बोल-चाल कैसे शुरू करे।

बनावटी हँसी हँस कर अचानक जो बात उसकी जबान पर आ गई, महेंद्र वही बोला। बोला, 'मैं देख रहा हूँ, तुमने भी मेरी तरह पढ़ने में जी लगाया है। यहाँ कापी-किताबें पड़ी देखी थीं, कहाँ गईं?'

बात बेसिर-पैर की लगी। इतना ही नहीं, उसने आशा को चोट की। गँवार आशा शिक्षित होने की चेष्टा कर रही है, वह बड़ी ही गोपन बात थी उसकी। और उसका वह संकल्प अगर किसी के हँसी-मजाक के अभ्यास से भी गोपन रखने का विषय था तो वह खास तौर से महेंद्र। और उसी महेंद्र ने जब बोल-चाल के आरंभ में ही हँस कर वही बात चलाई, तो बेरहम बातों की मार खाए कोमल बच्चे की देह-सा उसका मन

संकुचित और पीड़ित होने लगा। वह कुछ बोली नहीं, मुँह फेर कर तिपाई का किनारा पकड़े खड़ी रही।

मुँह से बात निकलते ही महेंद्र ने समझ लिया था कि बात संगत और समय के अनुकूल नहीं हुई। लेकिन ऐसी स्थिति में उपयुक्त बात क्या हो सकती है, वह सोच ही न सका। बीच में एक इतना बड़ा विद्रोह हो गया, उसके बाद पहले की तरह कोई सहज बात जँचती नहीं। महेंद्र ने सोचा, 'मसहरी के अंदर दाखिल हो जाऊँ, तो वहाँ के एकांत से बात करना शायद सहज हो।' यह सोच कर अपनी धोती के छोर से वह फिर मसहरी झाड़ने लगा। नया अभिनेता रंगमंच पर जाने से पहले जैसे अपना पार्ट मन-ही-मन दुहराया करता है, महेंद्र वैसे ही मसहरी के सामने खड़ा-खड़ा अपने वक्तव्य और कर्तव्य की सोचता रहा। इतने में हल्की-सी आहट हुई। महेंद्र ने मुड़ कर देखा, लेकिन आशा नहीं थी।

43.अगले दिन महेंद्र ने माँ से कहा - 'माँ, पढ़ने-लिखने के लिए मुझे कोई एकांत कमरा चाहिए। मैं चाची वाले कमरे में रहूँगा।'

माँ खुश हो गई, 'तब तो महेंद्र अब घर में ही रहा करेगा। लगता है, बहू से सुलह हो गई। भला अपनी ऐसी अच्छी बहू की सदा उपेक्षा कर सकता है। ऐसी लक्ष्मी को छोड़ कर उस मायाविनी डायन के पीछे वह कब तक भूला रह सकता है?'

माँ ने झट कहा - 'हर्ज क्या है, रहो!'

उन्होंने तुरंत कुंजी निकाली, ताला खोला और झाड़-पोंछ की धूम मचा दी- 'बहू, अरी ओ बहू, कहाँ गई?' बड़ी कठिनाई से घर के एक कोने में दुबकी हुई बहू को बरामद किया गया - 'एक धुली चादर ले आओ! इस कमरे में मेज नहीं है, लगानी पड़ेगी। इस रोशनी से काम नहीं चलेगा, ऊपर से अपना वाला लैंप भिजवा दो।' इस तरह दोनों ने मिल कर उस घर के राजाधिराज के लिए अन्नपूर्णा के कमरे में राज-सिंहासन तैयार कर दिया। महेंद्र ने सेवा में लगी हुई माँ-बहू की तरफ ताका तक नहीं, वहीं किताब लिए जरा भी समय बर्बाद न करके गंभीर हो कर पढ़ने बैठ गया।

शाम को भोजन के बाद वह फिर बैठा। सोना ऊपर के कमरे में होगा या वहीं, कोई न समझ सका। बड़े जतन से राजलक्ष्मी ने आशा को मूरत की तरह सजा कर कहा - 'बहू, महेंद्र से पूछ तो आओ, उसका बिस्तर क्या ऊपर लगेगा?' इस प्रस्ताव पर आशा का पाँव हर्गिज न हिला, वह सिर झुकाए चुपचाप खड़ी रही। नाराज हो कर राजलक्ष्मी खरी-खोटी सुनाने लगीं। बड़े कष्ट से आशा दरवाजे तक गई, पर उससे

आगे न बढ़ सकी। दूर से बहू का वह रवैया देख कर राजलक्ष्मी नाराज हो कर इशारे से निर्देश करने लगीं। मरी-सी हो कर आशा कमरे में गई। आहट पा कर किताबों से सिर न उठा कर ही महेंद्र ने कहा - 'मुझे अभी देर है - फिर तड़के से ही उठ कर पढ़ना है - मैं यहीं सोऊँगा।' शर्म की हद हो गई! आशा महेंद्र को ऊपर सुलाने के लिए थोड़े ही गिड़गिड़ाने आई थी।

वह निकली। निकलते ही खीझ कर राजलक्ष्मी ने पूछा - 'क्यों, क्या हुआ?'

आशा बोली - 'अभी पढ़ रहे हैं। वे यहीं सोएँगे।'

कह कर वह अपने अपमानित शयन-कक्ष में चली गई। कहीं उसे चैन नहीं - मानो सब कुछ दोपहर की धरती-सा तप उठा है।

कुछ रात बीती, तो उसके कमरे के दरवाजे पर थपकी पड़ी - 'बहू, बहू, दरवाजा खोलो!'

आशा ने झट-पट दरवाजा खोल दिया। दमे की मरीज राजलक्ष्मी सीढ़ियाँ चढ़ कर तकलीफ से साँस ले रही थीं। कमरे में जा कर वह बिस्तर पर बैठ गईं और वाक्-शक्ति लौटते ही बोलीं - 'तुम्हारी अक्ल की बलिहारी! ऊपर कमरा बंद किए पड़ी हो! यह क्या राग-रोष का समय है! इस मुसीबत के बाद भी तुम्हारे भेजे में बुद्धि नहीं आई! जाओ नीचे जाओ!'

आशा ने धीमे से कहा - 'उन्होंने कहा है, एकांत में रहेंगे।'

राजलक्ष्मी - 'कह दिया और हो गया। गुस्से में जाने क्या कह गया, उसी पर तुम तुनक बैठोगी। ऐसी तुनक-मिजाज होने से काम नहीं चलेगा। जाओ, जल्दी जाओ।'

दु:ख के दिनों में सास को बहू से लाज नहीं। जो भी तरकीब उन्हें आती है, उसी से महेंद्र को किसी तरह बाँधना पड़ेगा। आवेग से बातें करते हुए राजलक्ष्मी का फिर से दम फूलने लगा। अपने को थोड़ा-बहुत सँभाल कर उठीं। आशा भी आजिज न हो कर पकड़ कर उन्हें नीचे लिवा ले गई। उनके सोने के कमरे में आशा ने उन्हें बिठा दिया और पीठ की तरफ तकिए लगाने लगी। राजलक्ष्मी बोलीं - 'रहने दो बहू, किसी को भेज दो। तुम जाओ!'

अबकी आशा जरा भी न हिचकी। सास के कमरे से निकल कर सीधे महेंद्र के कमरे में गई। महेंद्र के सामने मेज पर किताब खुली पड़ी थी - वह मेज पर दोनों पैर रख कर

कुर्सी पर माथा टेके ध्यान से न जाने क्या सोच रहा था। उसके पीछे पैरों की आहट हुई। चौंक कर उसने पीछे की ओर देखा। मानो किसी के ध्यान में लीन था - एकाएक धोखा हुआ कि वह आ गई। आशा को देख कर महेंद्र सँभला। खुली किताब को उसने अपनी गोद में खींच लिया।

मन-ही-मन महेंद्र को अचरज हुआ। इन दिनों ऐसे बेखटके तो आशा उसके सामने नहीं आती - अचानक भेंट हो जाती है तो वह वहाँ से चल देती है। आज इतनी रात को वह इस सहज भाव से उसके कमरे में आ गई, ताज्जुब है! किताब से आँखें हटाए बिना ही महेंद्र ने समझा, आज आशा के लौट जाने का लक्षण नहीं। वह महेंद्र के सामने आ कर स्थिर भाव से खड़ी हुई। इस पर महेंद्र से मान करते न बना। सिर उठा कर उसने देखा। आशा ने साफ शब्दों में कहा - 'माँ का दम उखड़ आया है। चल कर एक बार देख लो तो अच्छा हो!'

महेंद्र - 'वे हैं कहाँ?'

आशा - 'अपने सोने के कमरे में हैं। नींद नहीं आ रही है।'

महेंद्र - 'अच्छा, चलो, उन्हें देख आऊँ।'

बहुत दिनों के बाद आशा से इतनी-सी बात करके महेंद्र जैसे हल्का हुआ। किसी दुर्भेद्य किले की दीवार-सी नीरवता मानो उन दोनों के बीच स्याह छाया डाले खड़ी थी - महेंद्र की ओर से उसे तोड़ने का कोई हथियार न था, ऐसे समय आशा ने अपने हाथों किले में एक छोटा-सा दरवाजा खोल दिया। आशा सास के कमरे के दरवाजे पर खड़ी रही। महेंद्र गया। उसे असमय में अपने कमरे में आया देख कर राजलक्ष्मी को डर लगा। सोचा, 'कहीं फिर दोनों में कहा-सुनी हो गई और वह चल देने की कहने आया हो।' पूछा - 'अब तक सोया नहीं, महेंद्र?'

महेंद्र ने कहा - 'क्या दमा उखड़ आया है, माँ?'

जमाने के बाद यह सवाल सुन कर उनके मन में मान हो आया। समझीं, 'जब बहू ने जा कर बताया, तो यह माँ का हाल पूछने आया है।' इस आवेश से उनका कलेजा और भी काँपने लगा। किसी तरह बोलीं - 'तू सो जा कर, यह कुछ नहीं।'

महेंद्र - 'नहीं, नहीं एक बार जाँच देखना अच्छा है। यह बीमारी टालने की नहीं।'

महेंद्र को पता था, माँ को हृदय की बीमारी है। इस वजह से तथा उनके चेहरे का लक्षण देख कर उसे घबराहट हुई।

माँ ने कहा - 'जाँचने की जरूरत नहीं। मेरी यह बीमारी नहीं छूटेगी।'

महेंद्र ने कहा - 'खैर, आज की रात के लिए सोने की दवा ला देता हूँ। सवेरे अच्छी तरह से देखा जाएगा।'

राजलक्ष्मी - 'दवा ढेर खा चुकी, दवा से कुछ होता-जाता नहीं। बहुत रात हो गई, तुम सो जाओ।'

महेंद्र - 'तुम्हें जरा चैन तो मिले।'

इस पर राजलक्ष्मी ने दरवाजे पर खड़ी बहू को संबोधित करके कहा - 'बहू, तुम रात में महेंद्र को तंग करने के लिए यहाँ क्यों ले आईं!'

कहते-कहते उनकी साँस की तकलीफ और भी बढ़ गई। तब आशा कमरे में आई। उसने कोमल किन्तु दृढ़ स्वर में महेंद्र से कहा - 'तुम सोओ जा कर। मैं माँ के पास रहूँगी।'

महेंद्र ने आशा को अलग बुला कर कहा - 'मैंने एक दवा लाने भेजा है। दो खुराक दवा होगी। एक से अगर नींद न आए तो घंटे बाद दूसरी खुराक देना। रात में साँस और बढ़े तो मुझे खबर देना।'

कह कर महेंद्र अपने कमरे में चला गया। आशा आज जिस रूप में उसके सामने प्रकट हुई, उसके लिए वह रूप नया था। इस आशा में संकोच नहीं, दीनता नहीं - यह आशा अपने अधिकार में खड़ी हुई थी। अपनी स्त्री की महेंद्र ने अपेक्षा की थी, मगर घर की बहू के लिए संभ्रम हुआ।

आशा ने जवाब न दिया। पीछे बैठ कर पंखा झलने लगी। राजलक्ष्मी ने कहा - 'तुम सोओ जा कर, बहू।'

आशा धीमे से बोली - 'मुझे यहीं रहने को कह गए हैं।'

आशा समझती थी कि यह जान कर माँ खुश होंगी कि महेंद्र उसे माँ की सेवा के लिए छोड़ गया है।

44.राजलक्ष्मी ने जब साफ समझ लिया कि आशा महेंद्र के मन को बाँध नहीं पा रही है, तो उनके जी में आया, कम-से-कम मेरी बीमारी के नाते ही महेंद्र को यहाँ रहना पड़े, तो भी अच्छा है। उन्हें डर लगा, कहीं वे सचमुच ठीक न हो जाएँ। इसलिए आशा से छिपा कर दवा फेंकने लगीं।

अनमना महेंद्र खास कुछ खयाल नहीं करता था। लेकिन आशा यह देख रही थी कि राजलक्ष्मी की बीमारी दबने के बजाय कुछ बढ़ ही रही है। वह सोचती, 'महेंद्र खूब सोच-विचार कर दवा नहीं दे रहा है - उसका मन इतना ही खराब हो गया है कि माँ की तकलीफ भी उसे सचेतन नहीं कर पाती।' उसकी इस दुर्गति पर आशा अपने मन में उसे धिक्कारे बिना न रह सकी। एक तरफ से बिगड़ने पर कोई क्या हर तरफ से बर्बाद हो जाता है। एक दिन शाम को बीमारी की तकलीफ में राजलक्ष्मी को बिहारी की याद आ गई। जाने वह कब से नहीं आया। आशा से पूछा - 'जानती हो बहू, बिहारी आजकल कहाँ है? उसका महेंद्र से कुछ झगड़ा है, क्यों? यह उसने बड़ा बेजा किया, बहू! उस-जैसा महेंद्र का भला चाहने वाला और कोई दोस्त नहीं।'

कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू जमा हो आए। एक-एक करके आशा को बहुतेरी बातें याद आईं। अंधी और भोली आशा को समय पर चेताने के लिए जाने कितनी बार, कितनी कोशिश बिहारी ने की और उन्हीं कोशिशों के चलते वह आशा का अप्रिय हो उठा।

फिर बड़ी देर तक चुपचाप चिंतित रह कर राजलक्ष्मी बोल उठीं - 'बहू, बिहारी होता तो हमारे इस आड़े वक्त में बड़ा काम आता। वह हमें बचाता, बात यहाँ तक न बढ़ पाती।'

आशा चुपचाप सोचती रही। उसाँस ले कर राजलक्ष्मी ने कहा - 'उसे अगर मेरी बीमारी का पता चल जाए, तो वह हर्गिज नहीं रुक सकता।'

आशा समझ गई, राजलक्ष्मी चाहती हैं कि बिहारी को यह खबर मिले। बिहारी के न होने से वह असहाय-सी हो गई हैं।

कमरे की बत्ती गुल करके चाँदनी में महेंद्र खिड़की के पास चुप खड़ा था। पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा था। घर में कोई आराम नहीं। जो नितांत अपने हैं, उनसे जब सहज नाता टूट जाता है तो उन्हें बिराने की तरह आसानी से छोड़ा नहीं जा सकता और फिर प्रियजन के समान सहज ही अपनाया भी नहीं जा सकता।

पीछे आहट मिली। महेंद्र ने समझा, आशा आई है। मानो आहट उसे मिली ही नहीं, इस भाव से वह स्थिर रहा। आशा बहाना ताड़ गई, फिर भी वह कमरे से बाहर नहीं गई। पीछे खड़ी-खड़ी बोली - 'एक बात है, वही कह कर मैं चली जाऊँगी।'

महेंद्र ने पलट कर कहा - 'जाना ही क्यों पड़ेगा - जरा देर बैठ ही जाओ।'

इस भलमनसाहत पर उसने ध्यान दिया। स्थिर खड़ी-खड़ी बोली - 'बिहारी भाई साहब को माँ की बीमारी की खबर देना लाजिमी है।'

बिहारी का नाम सुनते ही महेंद्र के गहरे जख्म पर चोट लगी। अपने को सँभाल कर वह बोला - 'लाजिमी क्यों है, मेरे इलाज का भरोसा नहीं हो रहा है, क्यों?'

आशा ने मन में यह शिकायत भरी-सी थी कि महेंद्र माँ के इलाज में उतना ध्यान नहीं दे रहा है, तो उसके मुँह से निकल पड़ा - 'कहाँ, उनकी बीमारी तो जरा भी नहीं सुधरी, बल्कि दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है।'

इस मामूली बात में जो आँच थी, महेंद्र अपने अहंकार से आहत हो विस्मित व्यंग्य के साथ बोला - 'देखता हूँ, तुमसे डाक्टरी सीखनी पड़ेगी।'

इस व्यंग्य से आशा को उसकी जमी हुई वेदना पर अप्रत्याशित चोट लगी। तिस पर कमरा अँधेरा था, जो सदा ही चुप रह जाने वाली आशा आज बे-खटके तेजी के साथ बोल उठी - 'डाक्टरी न सही, माँ की सेवा सीख सकते हो।'

आशा से ऐसा जवाब पा कर महेंद्र के अचरज की सीमा न रही। ऐसे तीखे वाक्य सुनने का वह आदी न था। वह कठोर हो उठा। बोला - 'तुम्हारे बिहारी भाई साहब को यहाँ आने की मनाही क्यों की है - तुम तो जानती हो - शायद फिर याद आ गई है!'

आशा तेजी से बाहर चली गई। शाम की आँधी मानो उसे ढकेल कर ले गई। शर्म अपने लिए न थी। जो आदमी सिर से पैर तक अपराध में डूबा हो, वह जुबान पर ऐसे झूठे अपवाद भी ला सकता है! इतनी बड़ी बेहयाई को लाज के पहाड़ से भी नहीं ढँका जा सकता।

आशा के चले जाने के बाद ही महेंद्र अपनी पूरी हार का अनुभव कर सका। महेंद्र को मालूम भी न था कि आशा कभी भी किसी भी अवस्था में महेंद्र को इस तरह धिक्कार सकती है। उसे लगा, जहाँ उसका सिंहासन था, वहीं वह धूल में लोट रहा है। इतने

दिनों के बाद अब उसे यह शंका होने लगी, 'आशा की वेदना कहीं घृणा में न बदल जाए।'

और उधर बिहारी की चर्चा आते ही विनोदिनी की चिंता ने उसे बेताब कर दिया। पश्चिम से बिहारी लौटा या नहीं, कौन जाने? हो सकता है, इस बीच विनोदिनी उसका पता ले आई हो, विनोदिनी से बिहारी की भेंट भी असंभव नहीं। महेंद्र से अब प्रतिज्ञा का पालन न हो सका।

रात को राजलक्ष्मी की तकलीफ बढ़ गई। उससे न रहा गया। उन्होंने महेंद्र को बुलावा भेजा। बड़ी तकलीफ से बोली फूटी- 'महेंद्र, बिहारी को देखने को मेरा बड़ा जी चाहता है - बहुत दिनों से वह नहीं आया है।'

आशा सास को पंखा झल रही थी। मुँह नीचा किये बैठी रही। महेंद्र ने कहा - 'वह यहाँ नहीं है। जाने कहाँ पछाँह गया है।'

राजलक्ष्मी ने कहा **-** 'मेरी अंतरात्मा कह रही है, वह यहाँ है, सिर्फ तुझसे रूठ कर नहीं आ रहा है। मेरे सिर की कसम रही, कल तू एक बार उसके यहाँ जाना।'

महेंद्र ने कहा - 'अच्छा, जाऊँगा।'

आज सब बिहारी के लिए परेशान हैं।

45.दूसरे दिन तड़के ही महेंद्र बिहारी के यहाँ पहुँच गया। देखा, दरवाजे पर कई बैलगाड़ियों पर नौकर-चाकर सामान लाद रहे हैं। महेंद्र ने भज्जो से पूछा - 'माजरा क्या है?' भज्जो ने कहा - 'बाबू ने बाली में गंगा के किनारे एक बगीचा लिया है। यह सब वहीं जा रहा है।' महेंद्र ने पूछा - 'बाबू घर पर हैं क्या?' भज्जो ने कहा - 'वे सिर्फ दो दिन कलकत्ता रुक कर कल बगीचे चले गए।'

सुनते ही महेंद्र का मन आशंका से भर गया। उसकी गैरहाजिरी में बिहारी से विनोदिनी की भेंट हुई है, इस पर उसे कोई संदेह न रहा। उसने कल्पना की आँखों से देखा, विनोदिनी के डेरे के बाहर भी बैलगाड़ियाँ लद रही हैं। उसे यह निश्चित-सा लगा कि इसलिए मुझ नासमझ को विनोदिनी ने डेरे से दूर ही रखा है।

पल की भी देर न करके महेंद्र गाड़ी पर सवार हुआ और कोचवान से हाँकने को कहा। बीच-बीच में कोचवान को इसके लिए गालियाँ सुनाईं कि घोड़े तेज नहीं चल रहे हैं। गली के अंदर डेरे के दरवाजे पर पहुँच कर देखा, यात्रा की कोई तैयारी नहीं है। डर

लगा, वहीं यह काम पहले ही न हो चुका हो। तेजी से किवाड़ के कड़े खटखटाए। अंदर से जैसे ही बूढ़े नौकर ने दरवाज़ा खोला, महेंद्र ने पूछा - 'सब ठीक तो है?'

उसने कहा - 'जी हाँ, ठीक ही है।'

ऊपर जा कर महेंद्र ने देखा, विनोदिनी नहाने गई है। उसके सूने सोने के कमरे में जा कर महेंद्र विनोदिनी के रात के बिस्तर पर लोट गया, दोनों हाथों से खींच कर चादर को छाती के पास ले आया और पहुँच कर उस पर मुँह रखते हुए बोला - 'बेरहम, निर्दयी!'

हृदय के उच्छ्वास को इस तरह निकल कर वह सेज से उठ कर विनोदिनी का इंतजार करने लगा। कमरे में चहलकदमी करते हुए देखा, फर्श के बिछौने पर एक अखबार खुला पड़ा है। समय काटने के खयाल से कुछ अनमना-सा हो कर अखबार उठा कर देखा। जहाँ पर उसकी नजर पड़ी, वहीं पर बिहारी का नाम था। उसका मन बात-की-बात में अखबार देखते-देखते वहीं पर टूट पड़ा। किसी ने संपादक के नाम पत्र लिखा था, 'मामूली तनखा पाने वाले गरीब किरानियों के बीमार होने पर नि:शुल्क चिकित्सा और सेवा के लिए बिहारी ने बाली में एक बगीचा खरीदा है, वहाँ एक साथ पाँच आदमियों के लिए प्रबंध हो चुका है, आदि-आदि।'

यह खबर विनोदिनी ने पढ़ी, पढ़ कर उसके मन में क्या हुआ होगा! बेशक उसका मन उधर ही भाग-भाग कर रहा होगा। न केवल इसीलिए बल्कि महेंद्र का जी इस वजह से और भी छटपटाने लगा कि बिहारी के इस संकल्प से उसके प्रति विनोदिनी की भक्ति और भी बढ़ जाएगी। बिहारी को महेंद्र ने अपने मन में 'हम्बग' और उसके इस काम को 'सनक' कहा।

विनोदिनी के पैरों की आहट सुन कर महेंद्र ने अखबार मोड़ दिया। नहा कर विनोदिनी कमरे में जो आई, महेंद्र उसके चेहरे की तरफ देख कर हैरत में आ गया। उसमें जाने कैसा एक अनोखा बदलाव आ गया था। मानो पिछले कई दिन तक वह धूनी जला कर तप कर रही थी। शरीर उसका दुबला हो गया था और उस दुबलेपन को भेद कर उसके पीले चेहरे से एक दमक निकल रही थी।

बिहारी के पत्र की उम्मीद उसने छोड़ दी है। अपने ऊपर बिहारी की बेहद हिकारत की कल्पना करके वह आठों पहर चुपचाप जल रही थी। बिहारी मानो उसी का तिरस्कार करके पछाँह चला गया है - उस तक पहुँच पाने की कोई तरकीब उसे नहीं सूझी। काम-काजी विनोदिनी काम की कमी से इस छोटे-से घर में घुल रही थी - उसकी

सारी तत्परता खुद उसी को घायल करती हुई चोट करती थी। उसके समूचे भावी जीवन को इस प्रेमहीन, कर्महीन, आनंदहीन घर में इस सँकरी गली में सदा के लिए कैद समझ कर उसकी बागी प्रकृति हाथ न आने वाले अदृष्ट के खिलाफ मानो आसमान से सिर मारने की बेकार कोशिश कर रही थी। नादान महेंद्र ने विनोदिनी की मुक्ति के सारे रास्तों को चारों तरफ से बंद करके जीवन को इतना सँकरा बना दिया है, उस महेंद्र के प्रति उसकी घृणा और विद्वेष की सीमा न रही। वह समझ गई थी कि उस महेन्द्र को अब वह ठुकराकर हर्गिज दूर नहीं जा सकती। इस संकरे डेरे में महेन्द्र रोज उसके पास सट कर बैठा करेगा, अलक्षित आकर्षण से प्रतिदिन तिल-तिल वह उसकी ओर खिंचती रहेगी - इस अंधे कुएँ में, इस समाज-भ्रष्ट जीवन के कीच की सेज पर घृणा और आसक्ति के बीच रोज-रोज जो लड़ाई होती रहेगी, वह बड़ी ही वीभत्स है। उसने खुद अपने हाथों, अपने से चाहकर महेन्द्र के मन के अतल से एक लपलपाती जीभ वाली लोलुपता के जिस क्लेद-सने सरीसृप को खोद निकाला है, उसकी पूँछ के बंधन से वह अपने को कैसे बचाएगी? एक तो उसका दुखा हुआ दिल, तिस पर यह छोटा रुँधता-सा डेरा और उसमें महेन्द्र की वासना की लहरों के थपेड़े - इसकी कल्पना से ही विनोदिनी का मन-प्राण पीड़ित हो उठा। जीवन में इसका अन्त कहाँ? इनमें से वह बाहर कब निकल पायगी?

विनोदिनी का वह दुबला-पीला चेहरा देख कर महेंद्र के मन में ईर्ष्या जल उठी। उसमें ऐसी कोई शक्ति नहीं कि वह बिहारी की चिंता में लगी इस तपस्विनी को जबरदस्ती उखाड़ सके? गिद्ध जैसे मेमने को झपट्टा मार कर देखते-ही-देखते अपने अगम अभ्रभेदी पहाड़ के बसेरे में ले भागता है, क्या वैसी ही कोई मेघों से घिरी दुनिया की निगाहों से परे जगह नहीं, जहाँ महेंद्र अकेला अपने इस सुंदर शिकार को कलेजे के पास छिपा कर रख सके?

विरह की जलन स्त्रियों के सौंदर्य को सुकुमार कर देती है, ऐसा महेंद्र ने संस्कृत काव्यों में पढ़ा था। आज विनोदिनी को देख कर वह जितना ही अनुभव करने लगा, उतना ही सुख-सने दु:ख के आलोड़न से उसका हृदय बड़ा व्यथित होने लगा।

विनोदिनी जरा देर स्थिर रही। फिर पूछा - 'तुम चाय पी कर आए हो?'

महेंद्र ने कहा - 'समझ लो, पी कर ही आया हूँ, मगर इस वजह से अपने हाथ से प्याला देने की कंजूसी मत करो - प्याला मुझे दो।'

शायद जान कर ही विनोदिनी ने निहायत निर्दयता से महेंद्र से इस उच्छ्वास को चोट पहुँचाई। कहा - 'बिहारी भाई साहब इन दिनों कहाँ हैं, मालूम है?'

महेंद्र का चेहरा फक हो गया। बोला - 'कलकत्ता में तो वह नहीं हैं इन दिनों।'

विनोदिनी - 'पता क्या है उनका?'

महेंद्र - 'यह तो वह किसी को बताना नहीं चाहता।'

विनोदिनी - 'खोज नहीं की जा सकती पूछ-ताछ करके?'

महेंद्र - 'मुझे ऐसी जरूरत नजर नहीं आती।'

विनोदिनी - 'जरूरत ही क्या सब-कुछ है, बचपन से आज तक की मैत्री क्या कुछ भी नहीं?'

महेंद्र - 'बिहारी मेरा छुटपन का साथी है, तुम्हारी दोस्ती महज दो दिन की है, फिर भी ताकीद तुम्हारी ही ज्यादा है।'

विनोदिनी - 'इसी से तुम्हें शर्म आनी चाहिए। दोस्ती कैसे करनी चाहिए, यह तुम अपने वैसे दोस्त से भी न सीख सके?'

महेंद्र - 'मुझे इसका कतई मलाल नहीं, मगर धोखे से औरत का दिल कैसे लिया जाता है, यह विद्या उससे सीखता तो आज काम आती।'

विनोदिनी - 'केवल चाहने से वह विद्या नहीं सीखी जा सकती, उसकी क्षमता होनी चाहिए।'

महेंद्र - 'गुरुदेव का पता मालूम हो, तो मुझे बताओ, इस उम्र में उनसे दीक्षा ले आऊँ, फिर क्षमता की कसौटी होगी।'

विनोदिनी - 'मित्र का पता ढूँढ़ निकालने की जुर्रत न हो तो प्रेम की बात जुबान पर मत लाओ! बिहारी भाई साहब से तुमने ऐसा बर्ताव किया है कि तुम पर कौन यकीन करेगा?'

महेंद्र - 'मुझ पर पूरा यकीन न होता तो मेरा इतना अपमान न कर पाती - मेरे प्रेम पर अगर इतनी निश्चिंतता न होती, तो शायद मुझे इतनी तकलीफ न होती। बिहारी

पालतू न बनने की कला जानता है, वह कला अगर इस बदनसीब को बता देता तो वह एक दोस्त का फर्ज अदा करता।'

'आखिर बिहारी आदमी है, इसी से पालतू नहीं बनता' - यह कह कर विनोदिनी खुले बालों को पीठ पर बिखेर कर खिड़की पर जिस तरह खड़ी थी, खड़ी रही। महेंद्र अचानक खड़ा हुआ। मुट्ठी कस ली और नाराजगी से गरज कर बोला - 'आखिर बार-बार मेरा अपमान करने का साहस क्यों करती हो तुम? इस इतने अपमान का कोई बदला नहीं मिलता, वह तुम्हारी क्षमता के कारण या मेरे गुण से? इतना बड़ा पुरुष मैं नहीं कि चोट करना जानता ही नहीं।'

इतना कह कर वह विनोदिनी की तरफ देखता हुआ जरा देर स्तब्ध रहा, फिर बोला - 'विनोद, चलो यहाँ से चलें - कहीं और। चाहे पछाँह, चाहे किसी पहाड़ पर, जहाँ तुम्हारा जी चाहे - चलो! यहाँ जीना मुहाल है। मैं मरा जा रहा हूँ।'

विनोदिनी बोली - 'चलो, अभी चलें पछाँह।'

महेंद्र - 'पछाँह?'

विनोदिनी - 'किसी खास जगह नहीं। कहीं भी दो दिन रहते-घूमते फिरेंगे।'

महेंद्र - 'ठीक है, आज ही रात को चलो!'

विनोदिनी राजी हो कर महेंद्र के लिए खाना बनाने गई। महेंद्र ने समझ लिया, बिहारी वाली खबर विनोदिनी की नजरों से नहीं गुजरी। अखबार में जी लगाने-जैसी स्थिति अभी उसके मन की नहीं है। कहीं अचानक उसे वह खबर न मालूम हो जाए, इसी उधेड़-बुन में महेंद्र पूरे दिन चौकन्ना रहा।

46.बिहारी की खोज-खबर ले कर महेंद्र लौटेगा, इस आशा से घर में उसकी रसोई बनी थी। काफी देर हो गई तो दुखी राजलक्ष्मी बेचैन हो उठीं। रात-भर नींद न आई थी, इससे वह काफी थकी थीं, फिर महेंद्र के लिए यह बेताबी उन्हें और कष्ट दे रही थी। यह देख कर आशा ने पूछ-ताछ कर यह पता किया कि महेंद्र की गाड़ी वापिस आ चुकी है। कोचवान से मालूम हुआ, महेंद्र बिहारी के यहाँ से होता हुआ पटलडाँगा के डेरे पर गया है। राजलक्ष्मी ने सुना और दीवार की तरफ करवट बदल कर लेटी रहीं। आशा उनके सिरहाने चित्र-लिखी-सी बैठी पंखा झलती रही और दिन समय पर आशा को खाने के लिए जाने का वह आदेश किया करती थीं - आज कुछ न कहा। कल जब

उनकी तबीयत ज्यादा खराब थी, यह देख कर भी महेंद्र विनोदिनी के मोह में चला गया, तो राजलक्ष्मी के लिए दुनिया में कुछ भी करने का मन बुझ गया।

कोई दो बजे आशा बोली - 'माँ, दवा पीने का वक्त हो गया।'

राजलक्ष्मी ने कोई जवाब न दिया, चुप रहीं, आशा दवा लाने जाने लगी, तो बोलीं - दवा की जरूरत नहीं बहू, तुम जाओ!'

आशा ने माँ के रूठने का मर्म समझा और उसकी समझ ने उसके हृदय के आंदोलन को दूना कर दिया। आशा से न रहा गया। अपनी रुलाई रोकते-रोकते वह फफक पड़ी। राजलक्ष्मी धीरे-धीरे करवट बदल कर आशा की तरफ हो गई और स्नेह से उसका हाथ सहलाने लगीं। कहा - 'बहू, तुम्हारी उम्र ही क्या है, सुख का मुँह देखने का तुम्हें बहुत समय है। मेरे लिए तुम परेशान मत होओ बिटिया, मैं काफी जी चुकी, अब क्या होगा जी कर?'

आशा की रुलाई और उमड़ आई। उसने आँचल से मुँह दबा लिया। रोगी के घर इस तरह निरानंद दिन मंद गति से कट गया। रूठे रहने के बावजूद दोनों नारियों को अंदर-ही-अंदर आशा थी कि महेंद्र अभी आएगा। खटका होते ही दोनों के शरीर में एक चौंक-सी जगती थी, इसे दोनों समझ रही थीं। धीरे-धीरे सूर्यास्त की आभा धुँधली पड़ गई - कलकत्ता के अंत:पुर में उस गोधूलि की आभा में न तो खिलावट है, और न अँधेरे का आवरण ही होता है - वह विषाद को गहरा बनाती है और निराशा के आँसू सुखा डालती है। कर्म और भरोसे के बल को वह छीन लेती है, लेकिन विश्राम और वैराग्य की शांति नहीं लाती। रोग से दुखी घर की उस सूनी और कुरूप साँझ में आशा पाँव दबाए गई और दीया जला कर कमरे में ले आई। राजलक्ष्मी ने कहा, 'बहू, रोशनी नहीं सुहाती, दीए को कमरे से बाहर रख दो।'

आशा दीये को बाहर रख आई। घना हो कर अँधेरा जब अनंत रात को छोटे-से कमरे में ले आया, तो आशा ने धीमे से राजलक्ष्मी से पूछा - 'माँ, उन्हें खबर भिजवाऊँ क्या?'

राजलक्ष्मी ने सख्त हो कर कहा - 'नहीं-नहीं, तुम्हें मेरी कसम, महेंद्र को खबर मत देना!'

आशा स्तब्ध रह गई। रोने की उसमें शक्ति न थी। कमरे के बाहर से बैरे ने आवाज दी- 'माँजी, बाबू के यहाँ से चिट्ठी आई है।'

यह सुना और तुरंत राजलक्ष्मी के मन में आया, 'हो न हो, महेंद्र की अचानक तबीयत खराब हो गई है। इसीलिए वह आ न सका और चिट्ठी भेजी है।' चिंतित और परेशान हो कर उन्होंने कहा, 'देखो तो बहू, महेंद्र ने क्या लिखा है?'

काँपते हुए हाथों से आशा ने बाहर जा कर रोशनी में चिट्ठी खोल कर पढ़ी। उसने लिखा था, इधर कुछ दिनों से तबीयत उचाट है, इसलिए वह घूमने के लिए पछाँह जा रहा है। माँ की बीमारी के लिए खास कोई चिंता की बात नहीं। उन्हें बराबर देखने के लिए नवीन डॉक्टर से कह दिया है। रात को उन्हें नींद न आए या सिर-दर्द हो तो क्या करना होगा, यह भी उसने लिखा था। साथ ही दवाखाने से मँगा कर उसने हल्के और ताकतवर पथ्य के दो डिब्बे भी भेज दिए थे। फिलहाल गिरीडीह के पते पर माँ का हाल लिखने के लिए चिट्ठी में 'पुनश्च' में अनुरोध किया था।

चिट्ठी पढ़ कर आशा स्तम्भित हो गई - एक जबरदस्त धिक्कार ने उसके दु:ख को छिपा लिया। यह कठोर समाचार वह माँ को किस तरह सुनाए?

आशा के इस विलंब से राजलक्ष्मी बहुत ही उतावली हो उठीं। बोलीं- 'बहू, मुझे बताओ, महेंद्र ने क्या लिखा है?'

आशा ने आखिर अंदर बैठ कर शुरू से आखिर तक चिट्ठी पढ़ सुनाई। राजलक्ष्मी ने कहा - 'अपनी तबीयत के बारे में उसने क्या लिखा है, जरा वह जगह फिर से पढ़ो तो...'

आशा ने फिर से पढ़ा - 'इधर कुछ दिनों से तबीयत उचाट-सी चल रही थी, इसीलिए मैं...'

राजलक्ष्मी - 'बस, बस, रहने दो। उचाट न हो तबीयत, क्या हो! बुड्ढी माँ मरती भी नहीं और बीमार हो कर उसे तंग करती है। तुम मेरी बीमारी को कहने उससे क्यों गई?' कह कर वह बिस्तर पर लेट गई।

बाहर जूतों की चरमराहट हुई। बैरे ने कहा - 'डॉक्टर आए हैं।'

खाँस कर डॉक्टर साहब अंदर आए। घूँघट निकाल कर आशा पलँग की आड़ में हो गई। डॉक्टर ने पूछा - 'आपको शिकायत क्या है, यह तो कहें।'

राजलक्ष्मी झुँझला कर बोलीं- 'शिकायत क्यों होगी? किसी को मरने भी न देंगे। आपकी दवा से ही क्या मैं अमर हो जाऊँगी?'

डाक्टर ने दिलासा देते हुए कहा - 'अमर चाहे न कर पाऊँ, तकलीफ घटे, इसकी कोशिश तो...

'राजलक्ष्मी कह उठीं - 'तकलीफ की दवा तभी होती थी, जब विधवाएँ जल मरती थीं। अब तो बाँध कर मारना ठहरा। आप जाएँ डॉक्टर साहब, मुझे तंग न करें - मैं अकेली रहना चाहती हूँ।'

डॉक्टर ने डर कर कहा - 'जरा आपकी नब्ज...'

राजलक्ष्मी ने खीझ कर कहा - 'मैं कह रही हूँ, आप जाइए... मेरी नब्ज सही है - यह खतरा नहीं कि यह जल्दी छूटेगी।'

लाचार हो कर डॉक्टर कमरे से बाहर चला गया। उसने आशा को बुलाया। उससे बीमारी का सारा ब्यौरा पूछा। सब-कुछ सुन कर गंभीर-सा हो कर वह फिर कमरे में गया। बोला - 'महेंद्र मुझ पर आपके इलाज का भार सौंप गया है। अगर आप इलाज न कराएँगी, तो उसे दु:ख होगा।'

महेंद्र को दु:ख होगा, यह बात राजलक्ष्मी को मजाक जैसी लगी। उन्होंने कहा - 'महेंद्र की इतनी फिक्र न करें आप। दुनिया में हर किसी को दु:ख भोगना पड़ता है। आप जाएँ, मुझे सोने दें।'

डॉक्टर ने समझा, बीमार को ज्यादा तंग करना ठीक नहीं। वह बाहर निकला और जो कुछ करना था, आशा को बता दिया।

आशा जब कमरे में लौटी, तो राजलक्ष्मी बोलीं - 'तुम जरा आराम कर लो जा कर, बिटिया! तमाम दिन मरीज के पास बैठी हो! हारू की माँ से कह दो, बगल के कमरे में बैठेगी।'

आशा राजलक्ष्मी को समझती थी। यह उनके स्नेह का आग्रह नहीं, आदेश था - इसे मान लेने के सिवा चारा नहीं। उसने हारू की माँ को भेज दिया था और अपने कमरे में नीचे लेट गई।

दिन-भर उसने खाया-पिया नहीं। तकलीफ भी थी। उसका तन-मन चूर-चूर हो गया था। उस दिन पड़ोस में दिन में ब्याह के बाजे बजते रहे। अभी फिर शहनाई पर धुन छिड़ी। उस रागिनी से चोट खा कर रात का अँधेरा काँप कर आशा पर बार-बार आघात करने लगा। उसके अपने विवाह के दिन की छोटी-से-छोटी घटना भी सजीव

हो उठी और सबने मिल कर रात के आसमान को स्वप्न की छवि से पूर्ण कर दिया। उस दिन की रोशनी, चहल-पहल, भीड़, उस दिन का माला-चन्दन, नए वस्त्र और यज्ञ के धुँए की खुशबू; नववधू के शंकित, लज्जित, आनन्दित हृदय का निगूढ़ कंपन - सब कुछ ने स्मृति का रूप लेकर चारों ओर से जितना ही उसे घेर लिया, उतनी ही हृदय की पीड़ा जीवन्त होकर जोर डालने लगी। घोर अकाल के दिनों में भूखा बच्चा जैसे भोजन के लिए माँ को मारने लगता है, वैसे ही सुख की स्मृतियाँ अपने खाद्य के लिए रोती हुई आशा की छाती में थपेड़े लगाने लगी। इस स्थिति ने आशा को चैन से न लेटने दिया। वह दोनों हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करने लगी कि दुनिया में उसकी एक-मात्र देवी उसकी मौसी की पावन स्निग्ध मूर्ति उसके हृदय में जाग पड़ी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि तपस्विनी को वह फिर से संसार के झमेलों में नहीं खींचेगी। कमरे में रोशनी जला कर वह कागज लिए लगातार आँसू पोंछती हुई लिखने बैठ गई -

पूजनीय मौसी,

तुम्हारे सिवाय आज मेरा कोई नहीं। एक बार आओ और अपनी इस दुखिया को अपनी गोद में उठा लो, वरना मैं जिऊँगी कैसे! क्या लिखूँ, नहीं जानती। चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

तुम्हारी प्यारी

चुन्नी'

47.अन्नपूर्णा काशी से आईं। धीरे-धीरे राजलक्ष्मी के कमरे में जा कर उन्हें प्रणाम करके उनके चरणों की धूल माथे ली। बीच में इस बिलगाव के बावजूद अन्नपूर्णा को देख कर राजलक्ष्मी ने मानो कोई खोई निधि पाई। उन्हें लगा, वे मन के अनजान ही अन्नपूर्णा को चाह रही थीं। इतने दिनों के बाद आज पल-भर में ही यह बात स्पष्ट हो उठी कि उनको इतनी वेदना महज इसलिए थी कि अन्नपूर्णा न थीं। एक पल में उसके दुखी चित्ता ने अपने चिरंतन स्थान पर अधिकार कर लिया। महेंद्र की पैदाइश से भी पहले जब इन दिनों जिठानी-देवरानी ने वधू के रूप में इस परिवार के सारे सुख-दु:खों को अपना लिया था - पूजा-त्योहारों पर, शोक-मृत्यु में दोनों ने गृहस्थी के रथ पर साथ-साथ यात्रा की थी - उन दिनों के गहरे सखीत्व ने राजलक्ष्मी के हृदय को आज पल-भर में आच्छन्न कर लिया। जिसके साथ सुदूर अतीत में उन्होंने जीवन का आरंभ किया था - तरह-तरह की रुकावटों के बाद बचपन की सहचरी गाढ़े दु:ख के

दिनों के उनकी बगल में खड़ी हुई। यह एक घटना उनके मौजूदा सुख-दु:खों, प्रिय घटनाओं में स्मरणीय हो गई। जिसके लिए राजलक्ष्मी ने इसे भी बेरहमी से चोट पहुँचाई थी, वह आज कहाँ है!

अन्नपूर्णा बीमार राजलक्ष्मी के पास बैठ कर उनका दायाँ हाथ अपने हाथ में लेती हुई बोलीं- 'दीदी!'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'मँझली!'

उनसे और बोलते न बना। आँखों में आँसू बहने लगे। यह दृश्य देख कर आशा से न रहा गया। वह बगल के कमरे में जा कर जमीन पर बैठ कर रोने लगीं। राजलक्ष्मी या आशा से अन्नपूर्णा महेंद्र के बारे में कुछ पूछने का साहस न कर सकीं। साधुचरण को बुला कर पूछा - 'मामा, महेंद्र कहाँ है?'

मामा ने महेंद्र और विनोदिनी का सारा किस्सा कह सुनाया। अन्नपूर्णा ने पूछा - 'बिहारी कहाँ है?'

साधुचरण ने कहा - 'काफी दिनों से वे इधर आए नहीं। उनका हाल ठीक-ठीक नहीं बता सकता।'

अन्नपूर्णा बोलीं **-** 'एक बार बिहारी के यहाँ जा कर खोज-खबर तो ले आइए!'

साधुचरण ने उसके यहाँ से लौट कर बताया- 'वे घर पर नहीं हैं, अपने बाली वाले बगीचे में गए हैं।'

अन्नपूर्णा ने डॉक्टर नवीन को बुला कर मरीज की हालत के बारे में पूछा। डॉक्टर ने बताया, 'दिल की कमजोरी के साथ ही उदरी हो आई है, कब अचानक चल बसें, कहना मुश्किल है।'

शाम को राजलक्ष्मी की तकलीफ बढ़ने लगी। अन्नपूर्णा ने पूछा - 'दीदी, नवीन डॉक्टर को बुलवा भेजूँ?'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'नहीं बहन, नवीन डॉक्टर के करने से कुछ न होगा।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'तो फिर किसे बुलवाना चाहती हो तुम?'

राजलक्ष्मी ने कहा - 'एक बार बिहारी को बुलवा सको, तो अच्छा हो।'

अन्नपूर्णा के दिल में चोट लगी। उस दिन काशी में उन्होंने बिहारी को दरवाजे पर से ही अँधेरे में अपमानित करके लौटा दिया था। वह तकलीफ वे आज भी न भुला सकी थीं। बिहारी अब शायद ही आए। उन्हें यह उम्मीद न थी कि इस जीवन में उन्हें अपने किए का प्रायश्चित करने का कभी मौका मिलेगा।

अन्नपूर्णा एक बार छत पर महेंद्र के कमरे में गई। घर-भर में यही कमरा आनंद-निकेतन था। आज उस कमरे में कोई श्री नहीं रह गई थी - बिछौने बेतरतीब पड़े थे। साज-सामान बिखरे हुए थे, छत के गमलों में कोई पानी नहीं डालता था, पौधे सूख गए थे।

आशा ने देखा, मौसी छत पर गई हैं। वह भी धीरे-धीरे उनके पीछे-पीछे गई। अन्नपूर्णा ने उसे खींच कर छाती से लगाया और उसका माथा चूमा। आशा ने झुक कर दोनों हाथों से उनके पाँव पकड़ लिए। बार-बार उनके पाँवों से अपना माथा लगाया। बोली - 'मौसी, मुझे आशीर्वाद दो, बल दो। आदमी इतना कष्ट भी सह सकता है, मैंने यह कभी सोचा तक न था। मौसी, इस तरह कब तक चलेगा?'

अन्नपूर्णा वहीं जमीन पर बैठ गईं। आशा उनके पैरों पर सिर रख कर लोट गई। अन्नपूर्णा ने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और चुपचाप देवता को याद करने लगीं।

जमाने के बाद अन्नपूर्णा के स्नेह-सने मौन आशीर्वाद ने आशा के मन में बैठ कर शांति का संचार किया। उसे लगा, उसकी मनोकामना पूरी हो गई है। देवता उस-जैसी नादान की उपेक्षा कर सकते हैं, मगर मौसी की प्रार्थना नहीं ठुकरा सकते।

मन में दिलासा और बल पा कर आशा बड़ी देर के बाद एक लंबा नि:श्वास छोड़ कर उठ बैठी। बोली - 'मौसी, बिहारी भाई साहब को आने के लिए चिट्ठी लिख दो!'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'उँहूँ, चिट्ठी नहीं लिखूँगी।'

आशा - 'तो उन्हें खबर कैसे होगी?'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'मैं कल खुद उससे मिलने जाऊँगी।'

48.जिन दिनों बिहारी पश्चिम में भटकता फिर रहा था, उसके मन में आया, 'जब तक कोई काम ले कर न बैठूँ चैन न मिलेगा।' यही सोच कर उसने कलकत्ता के गरीब किरानियों के मुफ्त इलाज और सेवा-जतन का भार उठाया। गर्मी के दिनों में डाबर

की मछलियाँ जिस तरह कम पानी और कीचड़ में किसी प्रकार जिंदा रह लेती हैं, तंग गलियों के सँकरे कमरों में परिवार का बोझ उठाने वाले बेचारे किरानियों की जिन्दगी वैसी ही है - उन दुबले, पीले पड़े, चिंता से पिसने वाले भद्रवर्ग के लोगों के प्रति बिहारी को बहुत पहले ही दया हो आई थी - इसलिए उसने उन्हें बगीचे की छाँह और गंगा-तट की खुली हवा दान देने का संकल्प किया।

बाली में उसने बगीचा खरीदा और चीनी कारीगरों से छोटे झोपड़े बनवाने शुरू किए। लेकिन मन को राहत न मिली। काम में लगने का दिन ज्यों-ज्यों करीब आने लगा, उसका मन अपने निश्चय से डिगने लगा। बार-बार उसका मन यही कहने लगा - 'इस काम में कोई सुख नहीं, रस नहीं, सौंदर्य नहीं - यह महज एक नीरस भार है।' काम की कल्पना ने इसके पहले कभी भी बिहारी को इतना परेशान नहीं किया।

कभी ऐसा भी था कि बिहारी को खास कोई जरूरत ही न थी, जो कुछ भी सामने आ जाता, उसी में वह सहज ही अपने को लगा सकता था। अब उसके मन में न जाने कौन-सी भूख जगी है, उसे बुझा लेने के पहले और किसी भी चीज में उसकी आसक्ति नहीं होती। जैसी शुरू से आदत रही है, इस-उस में हाथ डाल कर देखता और दूसरे ही क्षण उसे छोड़ कर छुटकारा पाना चाहता!

बिहारी के अंदर जो जवानी निश्चय सोई पड़ी थी, जिसके विषय में उसने कभी सोचा तक नहीं, वह जवानी विनोदिनी की जादू की छड़ी छूकर जाग उठी है। अभी-अभी पैदा हुए गरुड़ की तरह अपनी खुराक के लिए वह सारी दुनिया को झिंझोड़ती फिर रही है। इस भूखे जीव से बिहारी को पहले पहचान न थी - इसके चलते वह परेशान हो उठा है, अब कलकत्ता के इन दीन-दुर्बल अल्पायु किरानियों को लेकर वह क्या करेगा?

सामने आषाढ़ की गंगा। रह-रहकर उस पार नीले मेघों की पनी पाँत भी से झुके पेड़-पौधों पर घिर आती-नदी का पाट कहीं तो इस्पात की तलवार-सा चमकता, श्याम रंग लेता, कहीं आग-जैसा झकमका उठता। वर्षारंभ के इस समारोह पर बिहारी की ज्यों ही निगाह पड़ती, त्यों ही उसके हृदय  का दरवाजा खोलकर आकाश की इस नीली आभा में न जाने कौन एकाकिनी बाहर निकल पड़ती, वर्षा का आकाश चीरकर छिटकी पड़ती सारी किरणों को बीनकर न जाने कौन केवल उसी के मुँह पर अपलक आँखों की दमकती हुई कातरता बिखरेती।

बिहारी का जो पिछला जीवन सुख और सन्तोष से कट गया, उसे वह अब भारी नुकसान समझता। ऐसी मेघघिरी साँझ जाने कितनी आईं, पूर्णिमा की कितनी रातें - वे सब हाथों में अमृत का पात्र लिए बिहारी के सूने हृदय के द्वार से चुपचाप लौट गईं - उन दुर्लभ शुभ घड़ियों में कितने गीत घुटे रहे, कितने उत्सव न हो पाए, इसकी कोई हद नहीं। बिहारी के मन में जो पुरानी सुधियाँ थीं, उन्हें विनोदिनी ने उद्यत चुंबन की रक्तिम आभा से ऐसा फीका और तुच्छ कर दिया था। जीवन के ज्यादातर दिन महेंद्र की छाया में कटे! उनकी सार्थकता क्या थी? प्रेम की वेदना में सारे जल-थल-आकाश के केन्द्र-कुहर से ऐसी ताप में इस तरह बाँसुरी बजती है, यह तो अचेतन बिहारी कभी सोच भी न पाया था। विनोदिनी ने बिहारी को बाँहों में लपेट कर अचानक एक पल में जिस अनोखे सौंदर्य-लोक में पहुँचा दिया, उसे वह कैसे भूले! उसकी निगाह, उसकी चाहना आज सब ओर फैल गई है, उसकी अकुलाई साँसें बिहारी के रक्त-प्रवाह को पल-पल पर लहराए दे रही हैं और उसके परस की कोमल आँच बिहारी को घेरकर उसके पुलकित हृदय को फूल की तरह खिलाए हुए है।

लेकिन फिर भी उस विनोदिनी से बिहारी आज इस तरह दूर क्यों है? इसलिए कि विनोदिनी ने जिस सौंदर्य-रस से बिहारी का अभिषेक किया उस सौंदर्य के अनुकूल संसार में विनोदिनी से किसी संबंध की वह कल्पना नहीं कर सकता। कमल को तोड़ो तो कीच भी उठ आती है। क्या बताकर, कौन-सी ऐसी जगह में उसे बिठाए कि सुन्दर वीभत्स न हो। फिर कहीं महेन्द्र से छीना-झपटी होने लगे, तो माजरा इतना घिनौना हो उठेगा, जिसकी सम्भावना को बिहारी मन के कोने में भी जगह देने को तैयार नहीं। इसीलिए एकान्त गंगा-तट पर विश्व-संगीत के बीच अपनी मानसी प्रतिमा को बिठाकर वह अपने हृदय को धूप-सा जला रहा है। चिट्ठी भेजकर वह इसलिए विनोदिनी की खोज-खबर भी नहीं लेना चाहता कि कहीं कोई ऐसी खबर न मिल जाए, जिससे उसके सुख के सपनों का जाल बिखर जाय!

अपने बगीचे के दक्खिन में फले जामुन-तले बिहारी मेघ-घिरे प्रभात में चुपचाप पड़ा था, सामने से कोठी की डोंगी आ-जा रही थीं। अलसाया-सा वह उसी को देख रहा था। वेला धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। नौकर ने आ कर पूछा, 'भोजन का प्रबंध करे या नहीं?' बिहारी ने कहा - 'अभी रहने दो।'

इतने में उसने चौंक कर देखा, सामने अन्नपूर्णा खड़ी है। बदहवास-सा वह उठ पड़ा, दोनों हाथों से उनके पाँव पकड़ कर जमीन पर माथा टेक कर प्रणाम किया।

अन्नपूर्णा ने बड़े स्नेह से अपने दाएँ हाथ से उसके बदन और माथे को छुआ। भर आए से स्वर में पूछा - 'तू इतना दुबला क्यों हो गया है, बिहारी?'

बिहारी ने कहा - 'ताकि तुम्हारा स्नेह पा सकूँ।'

सुन कर अन्नपूर्णा की आँखें बरस पड़ीं। बिहारी ने व्यस्त हो कर पूछा - 'तुमने अभी भोजन नहीं किया है, चाची?'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'अभी मेरे खाने का समय नहीं हुआ।'

बिहारी बोला - 'चलो-चलो, मैं रसोई की जुगत किए देता हूँ। एक युग के बाद तुम्हारे हाथ की रसोई पत्तल का प्रसाद पा कर जी जाऊँगा मैं।'

महेंद्र और आशा के बारे में बिहारी ने कोई चर्चा नहीं की। इसका दरवाजा तो एक दिन खुद अन्नपूर्णा ने ही अपने हाथों बंद कर दिया था। मान में भर कर उसने उसी निष्ठुर निषेध का पालन किया।

खा चुकने के बाद अन्नपूर्णा ने कहा - 'घाट पर नाव तैयार है बिहारी, चल, कलकत्ता चल!'

बिहारी बोला - 'कलकत्ता से मेरा क्या लेना-देना।'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'दीदी बहुत बीमार है, वे तुम्हें देखना चाहती हैं एक बार।'

सुन कर बिहारी चौंक उठा। पूछा - 'और महेंद्र भैया?'

अन्नपूर्णा- 'वह कलकत्ता में नहीं है, बाहर गया है।'

सुनते ही बिहारी का चेहरा सफेद पड़ गया। वह चुप रहा।

अन्नपूर्णा ने पूछा **-** 'तुझे क्या मालूम नहीं है सारा किस्सा?'

बिहारी बोला - 'कुछ तो मालूम है, अंत तक नहीं।'

इस पर अन्नपूर्णा ने विनोदिनी को ले कर महेंद्र के भाग जाने का किस्सा बताया। बिहारी की निगाह में जल-थल-आकाश का रंग ही बदल गया, उसकी कल्पना के खजाने का सारा रस सुनते ही कड़वा हो गया - 'तो क्या वह मायाविनी उस दिन शाम को मेरे साथ खेल खेल गई? उसका प्रेम-निवेदन महज मक्कारी था! वह अपना गाँव

छोड़ कर बेहया की तरह महेंद्र के साथ भाग गई! विश्वास है उसको, और धिक् हूँ मैं कि मैंने एक पल के लिए भी उसका विश्वास किया। हाय री मेघ-घिरी साँझ, हाय री बारिश-खुली पूनो की रात, तुम्हारे जादू के करिश्मे कहाँ गए!'

49.बिहारी सोच रहा था, दुखिया आशा की ओर वह देखेगा कैसे! डयोढ़ी के अंदर कदम रखते ही स्वामीहीन घर की घनीभूत पीड़ा उसे दबोच बैठी। घर के नौकर-दरबानों की ओर ताकते हुए बौराए हुए महेंद्र के भाग जाने की शर्म ने उसके सिर को गाड़ दिया। पुराने और जाने-पहचाने नौकरों से उसने पहले की तरह मुलायमियत से कुशल-क्षेम न पूछी। हवेली में जाने को मानो उसके कदम नहीं उठ रहे थे। दुनिया के सामने खुले-आम महेंद्र बेबस आशा को जिस गहरे अपमान में छोड़ गया है, जो अपमान औरत के सबसे बड़े परदे को उघाड़ कर उसे सारी दुनिया की कौतूहल-भरी कृपा-दृष्टि के बीच खड़ा कर देता है, उसी अपमान के आवरणहीन स्वरूप में बिहारी सकुचाई और दुखित आशा को कौन-से प्राण ले कर देखेगा!

लेकिन इन चिंताओं और संकोच का मौका ही न रहा। हवेली में पहुँचते ही आशा दौड़ी-दौड़ी आई और बिहारी से बोली - 'भाई साहब, जरा जल्दी आओ, माँ को देखो जल्दी!'

बिहारी से आशा की खुल कर बातचीत ही पहली थी। दुर्दिन का मामूली झटका सारी रुकावटों को उड़ा ले जाता है - जो दूर-दूर रहते हैं, बाढ़ उन सबको अचानक एक सँकरी जगह में इकट्ठा कर देती है।

आशा की इस संकोचहीन अकुलाहट से बिहारी को चोट लगी। इस छोटे-से वाकए से ही वह समझ सका कि महेंद्र अपनी गिरस्ती की कैसी मिट्टी पलीद कर गया है।

बिहारी राजलक्ष्मी के कमरे में गया। अचानक साँस की तकलीफ हो जाने से राजलक्ष्मी फीकी पड़ गई थीं - लेकिन वह तकलीफ ज्यादा देर नहीं रही, इसलिए सँभल गईं।

बिहारी ने राजलक्ष्मी को प्रणाम किया। चरणों की धूल ली। राजलक्ष्मी ने उसे पास बैठने का इशारा किया और धीरे-धीरे कहा - 'कैसा है बिहारी? जाने कितने दिनों से तुझे नहीं देखा!'

बिहारी ने कहा - 'तुमने अपनी बीमारी की खबर क्यों नहीं भिजवाई? फिर क्या मैं जरा भी देर कर पाता।'

राजलक्ष्मी ने धीमे से कहा - 'यह क्या मुझे मालूम नहीं, बेटे! तुझे कोख में नहीं रखा मैंने, लेकिन तुझसे बढ़ कर मेरा अपना क्या दुनिया में है कोई?'

कहते-कहते राजलक्ष्मी की आँखों से आँसू बहने लगे। बिहारी झट-पट उठा। ताखों पर दवा-दारू की शीशियों को देखने के बहाने उसने अपने-आपको जब्त किया। उसके बाद आ कर उसने राजलक्ष्मी की नब्ज देखनी चाही। राजलक्ष्मी बोलीं- 'मेरी नब्ज को छोड़ - मैं पूछती हूँ, तू इतना दुबला क्यों हो गया है?'

अपने दुबले हाथों से राजलक्ष्मी ने बिहारी की गर्दन की हड्डी छू कर देखी।

बिहारी ने कहा - 'जब तक तुम्हारे हाथ की रसोई नसीब नहीं होती, यह हड्डी ढँकने की नहीं। तुम जल्दी ठीक हो जाओ माँ, मैं इतने में रसोई का इंतजाम कर रखता हूँ।'

राजलक्ष्मी फीकी हँसी हँस कर बोलीं - 'हाँ, जल्दी-जल्दी इंतजाम कर, बेटे। तेरी देख-रेख के लिए कोई भी नहीं है। अरी ओ मँझली, तुम लोग अब बिहारी की शादी करा दो, देखो न, इसकी शक्ल कैसी हो गई है।'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'तुम चंगी हो लो, दीदी - यह तो तुम्हारी ही जिम्मेदारी है।'

राजलक्ष्मी बोलीं **-** 'मुझे अब यह मौका न मिलेगा। बहन, बिहारी का भार तुम्हीं लोगों पर रहा, इसे तुम लोग सुखी रखना। मैं इसका ऋण नहीं चुका सकी, लेकिन भगवान भला करे इसका।' यह कह कर उन्होंने बिहारी के माथे पर अपना दायाँ हाथ फेर दिया।

आशा से कमरे में न रहा गया। वह रोने के लिए बाहर चली गई। अन्नपूर्णा ने भरी हुई आँखों से बिहारी को स्नेह-भरी दृष्टि से देखा।

राजलक्ष्मी को अचानक न जाने क्या याद आ गया। बोलीं - 'बहू, अरी ओ बहू!' आशा के अंदर आते ही बोलीं - 'बिहारी के खाने का इंतजाम किया या नहीं?'

बिहारी बोला - 'तुम्हारे इस पेटू को सबने पहचान लिया है, माँ। ड्योढ़ी पर आते ही नजर पड़ी, अंडे वाली मछलियाँ लिए वैष्णवी जल्दी-जल्दी अंदर जा रही है, मैं समझ गया, अभी इस घर से मेरी ख्याति मिटी नहीं है।'

और बिहारी ने हँस कर आशा की ओर देखा।

आशा आज शर्माई नहीं। स्नेह से हँसते हुए उसने यह दिल्लगी कबूल की। इस घर के लिए बिहारी क्या है, पहले आशा यह पूरी तरह न जानती थी - बहुत बार एक बे-मतलब का मेहमान समझ कर उसने उसकी उपेक्षा की है, बहुत बार उसकी यह बेरुखी उसके व्यवहार में साफ झलक पड़ी है। उसी अफसोस से धिक्कार से उसकी श्रद्धा और करुणा की तरफ तेजी से उमड़ पड़ी है।

राजलक्ष्मी ने कहा - 'मँझली बहू, यह महाराज के बस की बात नहीं, रसोई की निगरानी तुम्हें करनी पड़ेगी। काफी कड़वा न हो तो अपने इस 'बाँगाल' लड़के को खाना नहीं रुचता।'

बिहारी बोला - 'माँ, तुम्हारी माँ विक्रमपुर की लड़की थीं और तुम नदिया जिले के एक भले घर के लड़के को बांगाल 1 कहती हो! मुझे यह बर्दाश्त नहीं।'

इस पर काफी दिल्लगी रही। बहुत दिनों के बाद महेंद्र के घर की मायूसी का भार मानो हल्का हो गया।

इतनी बातें होती रहीं, मगर किसी भी तरफ से किसी ने भी महेंद्र का नाम न लिया। पहले बिहारी से महेंद्र की चर्चा ही राजलक्ष्मी की एकमात्र बात हुआ करती थी। महेंद्र ने अपनी माँ का इसके लिए बहुत बार मजाक भी उड़ाया है। आज उसी राजलक्ष्मी की जबान पर भूल कर भी महेंद्र का नाम न आते देख कर बिहारी दंग रह गया।

राजलक्ष्मी को झपकी लग गई। बाहर जा कर बिहारी ने अन्नपूर्णा से कहा - 'माँ की बीमारी तो सहज नहीं लगती।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'यह तो साफ ही देख रही हूँ।' कह कर अन्नपूर्णा खिड़की के पास बैठ गईं।

बड़ी देर चुप रह कर बोलीं- 'महेंद्र को तू खोज नहीं लाएगा, बेटे! अब तो देर करना वाजिब नहीं जँचता।'

बिहारी कुछ देर चुप रहा, फिर बोला - 'जो हुक्म करोगी, वह करूँगा। उसका पता मालूम है किसी को?'

अन्नपूर्णा - 'पता ठीक-ठीक किसी को मालूम नहीं, ढूँढ़ना पड़ेगा। और एक बात तुमसे कहूँ - आशा का खयाल करो। अगर विनोदिनी के चंगुल से महेंद्र को तू न निकाल सका, तो वह जिंदा न रहेगी।'

मन-ही-मन तीखी हँसी हँस कर बिहारी ने सोचा, 'मैं दूसरे का उद्धार करूँ - भगवान, मेरा उद्धार कौन करे!' बोला - 'विनोदिनी के जादू से महेंद्र को सदा के लिए बचा सकूँ, मैं ऐसा कौन-सा मंतर जानता हूँ, चाची!'

**1.**पूर्वी बंगाल के लोगों को बंगाल में मजाक में **'बांगाल'** कहते हैं।

इतने में मैली-सी धोती पहने आधा घूँघट निकाले आशा अपनी मौसी के पाँवों के पास आ बैठी। उसने समझा था, दोनों में राजलक्ष्मी की बीमारी के बारे में बातें हो रही हैं इसीलिए चली आई। पतिव्रता आशा के चेहरे पर गुम-सुम दु:ख की मौन महिमा देख कर बिहारी के मन में एक अपूर्व भक्ति का संचार हुआ। शोक में गर्म आँसू से सिंच कर इस तरुणा ने पिछले युग की देवियों-जैसी एक अटूट मर्यादा पाई है - अब वह मामूली नारी नहीं, दारुण दु:ख से वह मानो पुराणों की साध्वी स्त्रियों की उम्र पा गई है।

राजलक्ष्मी की दवा और पथ्य के बारे में आशा से बातें करके बिहारी ने उसे वहाँ से जब विदा किया, तो एक उसाँस भर कर उसने अन्नपूर्णा से कहा - 'महेंद्र को मैं उस चंगुल से निकलूँगा।'

बिहारी महेंद्र के बैंक में गया। वहाँ उसे पता चला महेंद्र इन दिनों उनकी इलाहाबाद शाखा से लेन-देन करता है।

50.स्टेशन जा कर विनोदिनी औरतों वाले ड्योढ़े दर्जे के डिब्बे में जा बैठी। महेंद्र ने कहा, 'अरे, कर क्या रही हो, मैं तुम्हारा दूसरे दर्जे का टिकट ले रहा हूँ।' वह बोली, 'बेजा क्या है, यहाँ आराम से ही रहूँगी।' महेंद्र ताज्जुब में पड़ गया। विनोदिनी स्वभाव से ही शौकीन थी। गरीबी का कोई भी लक्षण उसे न सुहाता था। अपनी गरीबी को वह अपने लिए अपमानजनक ही मानती थी। महेंद्र ने इतना समझ लिया था कि कभी उसके घर की खुशहाली, विलास की सामग्रियों और औरों की अपेक्षा उनके धनी होने के गौरव ने ही विनोदिनी के मन को आकर्षित किया था। इस धन-दौलत की, इस सारे आराम और गौरव की वह सहज ही मालकिन हो सकती थी, इस कल्पना ने उसे बड़ा उत्तेजित कर दिया था। आज जब उसको महेंद्र पर प्रभुत्व पाने का मौका मिला है, अनचाहे भी वह उसकी धन-दौलत को अपने काम में ला सकती है, तो वह क्यों ऐसी असह्य उपेक्षा से यों तन कर तकलीफदेह शर्मनाक दीनता अपना रही है? वह महेंद्र पर कम-से-कम निर्भर रहना चाह रही थी। जिस उन्मत महेन्द्र ने उस जिंदगी-भर के लिए उसके स्वाभाविक आश्रय से अलग कर

दिया है, उससे वह ऐसा कुछ भी नहीं लेना चाहती थी, जो उसके इस सर्वनाश की कीमत-सी गिनी जाय। जब तक वह महेन्द्र के यहाँ थी, उसमें वैधव्य की कोई खास कठोरता न थी, लेकिन अब उसने सब तरह के भोग-विलास से अपने को समेट लिया है। अब वह एक जून खाती, मोटा कपड़ा पहनती - और उसकी वह मचलती हुई हँसी-दिल्लगी न जाने कहाँ चली गई! अब वह ऐसी गुम, ऐसी ढँकी-सी, ऐसी दूर ओर भयंकर हो उठी है कि महेन्द्र उससे एक भी बात जोर देकर कहने का साहस नहीं कर सकता। अधीर होकर, क्रोधित होकर और ताज्जुब में पड़कर महेन्द्र बार-बार यही सोचने लगा कि इतनी कोशिशों के बाद इसने मुझे एक दुर्लभ फल की तरह इतनी ऊँची टहनी से तोड़ लिया है तो फिर वह मुझे सूँघे बिना मिट्टी में क्यों फेंके दे सही है!

महेन्द्र ने पूछा - "कहाँ का टिकट लूँ, कहो!"

महेंद्र ने पूछा - 'पछाँह की तरफ जहाँ भी चाहे, चलो! सुबह जहाँ गाड़ी रुकेगी उतर पड़ेंगे।'

महेंद्र को ऐसी यात्रा में कोई आकर्षण नहीं। आराम न मिले तो तकलीफ होती है। बड़े शहर में रहने की इच्छित जगह न मिले तो मुश्किल। इधर मन में यह डर लगा रहा कि विनोदिनी चुपचाप कहीं उतर न पड़े।

इस तरह विनोदिनी शनि ग्रह की तरह घूमने और महेंद्र को घुमाने लगी। कहीं भी चैन न लेने दिया। विनोदिनी बड़ी जल्दी दूसरे को अपना बना सकती है। कुछ ही देर में हमसफरों से मिताई कर लेती। जहाँ जाना होता वहाँ की सारी बातों का अता-पता लगा लेती, रात्रिशाला में ठहरती और जहाँ जो कुछ देखने जैसा होता, उन बंधुओं की मदद से देखती। अपनी आवश्यकता से महेंद्र विनोदिनी के आगे रोज-रोज अपने को बेकार समझने लगा। टिकट लेने के सिवाय कोई काम नहीं। शुरू-शुरू के कुछ दिनों तक वह विनोदिनी के साथ-साथ चक्कर काटा करता था, लेकिन धीरे-धीरे वह असह्य हो गया। खा-पी कर वह सो जाने की फिक्र में होता, विनोदिनी तमाम दिन घूमा करती। माता के लाड़ में पला महेंद्र यों भी चल सकता है, कोई सोचता भी न था।

एक दिन इलाहाबाद स्टेशन पर दोनों गाड़ी का इंतजार कर रहे थे। किसी वजह से गाड़ी आने में देर हो रही थी। इस बीच और जो गाड़ियाँ आ-जा रही थीं, विनोदिनी उनके मुसाफिरों को गौर से देख रही थी। शायद उसे यह उम्मीद थी कि पछाँह में

घूमते हुए चारों तरफ देखते-देखते अचानक किसी से भेंट हो जाएगी। कम-से-कम रुँधी गली के सुनसान घर में बेकार की तरह बैठ कर अपने को घोंट मारने की अपेक्षा खोज-बीन में, इस खुली राह की चहल-पहल में शांति थी।

अचानक उधर काँच के एक बक्स पर नजर पड़ते ही विनोदिनी चौंक उठी। उसमें उन लोगों की चिट्ठियाँ रखी जाती हैं, जिनका पता नहीं चलता। उसी बक्स के पत्रों में से एक में उसने बिहारी का नाम देखा। बिहारी नाम कुछ असाधारण नहीं। यह समझने की कोई वजह न थी कि यह बिहारी विनोदिनी का ही वांछित बिहारी है - तो भी बिहारी का पूरा नाम देखकर उसके सिवा किसी और बिहारी को संदेह न हुआ। उसने ठिकाना याद कर लिया। महेंद्र एक बेंच पर बड़ा खुश बैठा था। विनोदिनी उसके पास जा कर बोली - 'कुछ दिनों यहीं रहूँगी।'

विनोदिनी अपने इशारे पर महेंद्र को नचा रही थी और फिर भी उसके भूखे-प्यासे मन को खुराक तक न देती थी, इससे उसके पौरुष गर्व को ठेस लग रही थी और उसका मन दिन-प्रतिदिन बागी होता जा रहा था। इलाहाबाद रुक कर कुछ दिन सुस्ताने का मौका मिले तो मानो वह भी जाए - लेकिन इच्छा के अनुकूल होने के बावजूद उसका मन विनोदिनी के खयाल पर राजी होने को सहसा तैयार न हुआ। उसने नाराज हो कर कहा - 'जब निकल ही पड़ा तो जा कर ही रहूँगा, अब लौट नहीं सकता।'

विनोदिनी बोली **-** 'मैं नहीं जाऊँगी।'

महेंद्र बोला - 'तो तुम अकेली रहो, मैं चलता हूँ।'

विनोदिनी बोली - 'यही सही।' और बेझिझक उसने इशारे से कुली को बुलाया और स्टेशन से चल पड़ी।

पुरुष के कर्तत्व-अधिकार से परिपूर्ण महेंद्र स्याह-सूरत लिए बैठा रह गया। जब तक विनोदिनी आँखों से ओझल न हो गई, वह देखता रहा। बाहर आ कर देखा, विनोदिनी एक बग्घी पर बैठी है। उसने चुपचाप सामान रखवाया और कोच-बक्स पर बैठ गया। अपने अभिमान की मिट्टी पलीद होने के बाद उसमें विनोदिनी के सामने बैठने का मुँह न रहा।

लेकिन गाड़ी चली, तो चली। घंटा-भर बीत गया, शहर छोड़ कर वह खेतों की तरफ जा निकली। गाड़ीवान से पूछने में महेंद्र को संकोच हुआ। शायद गाड़ीवान यह सोचेगा कि असल में अंदर की औरत ही मालकिन है, इस बेकार आदमी से उसने यह

भी सलाह नहीं की है कि कहाँ जाना है। वह कड़वा घूँट पी कर चुपचाप कोच-बक्स पर बैठा रहा।

गाड़ी यमुना के निर्जन तट पर सुंदर ढंग से लगाए एक बगीचे के सामने आ कर रुकी। महेंद्र हैरत में पड़ गया। 'किसका है यह बगीचा? इसका पता विनोदिनी को कैसे मालूम हुआ?'

फाटक बंद था। चीख-पुकार के बाद बूढ़ा रखवाला बाहर निकला। उसने कहा - 'बगीचे के मालिक धनी हैं, बहुत दूर नहीं रहते। उनकी इजाजत ले आएँ तो यहाँ ठहरने दूँगा।'

विनोदिनी ने एक बार महेंद्र की तरफ देखा। बगीचे के सुंदर घर को देख कर महेंद्र लुभा गया था - बहुत दिनों के बाद कुछ दिनों के लिए रुकने की उम्मीद से वह खुश हो गया। विनोदिनी से कहा - 'चलो, उस धनी के पास चलें। तुम बाहर गाड़ी पर रहना, मैं अंदर जा कर किराया तय कर लूँगा।'

विनोदिनी बोली - 'मैं अब चक्कर नहीं काट सकती। तुम जाओ, मैं तब तक यहीं सुस्ताती हूँ। डरने की कोई बात नहीं।'

महेंद्र गाड़ी ले कर चला गया। विनोदिनी ने उस बूढ़े ब्राह्मण को बुला कर उसके बाल-बच्चों के बारे में पूछा; वे कौन हैं, कहाँ काम करते हैं, बच्चियों की शादी कहाँ हुई है। उसकी स्त्री के देहांत हो जाने की बात सुन कर करुण स्वर में बोली - 'ओह, तब तो तुम्हें काफी तकलीफ है। इस उम्र में दुनिया में निरे अकेले पड़ गए हो, कोई देखने वाला नहीं!'

और बातों-बातों में विनोदिनी ने पूछा - 'यहाँ बिहारी बाबू न थे?'

बूढ़े ने कहा - 'जी हाँ, थे कुछ दिन। माँजी क्या उनको पहचानती हैं?' विनोदिनी बोली - 'वे हमारे अपने ही हैं।'

बूढ़े से बिहारी का जो हुलिया मिला, उसे विनोदिनी को कोई शुबहा न रहा। घर बुला कर उसने सब कुछ पूछ-ताछ लिया कि बिहारी किस कमरे में सोता था, कहाँ बैठता था। उसके चले जाने के बाद से घर बंद पड़ा था, इससे लगा कि उसमें बिहारी की गंध है। लेकिन यह पता न चल सका कि बिहारी गया कहाँ - शायद ही वह फिर लौटे।

महेंद्र ने किराया चुका कर मालिक से वहाँ रहने की इजाजत ले ली।

51.हिमालय की चोटी यमुना को जो बर्फगली अक्षय जल-धारा देती है, उस यमुना में युगों-युगों से कवियों ने जो कवित्व का स्रोत ढाला है, वह भी अक्षय है। उसकी कल-कल में कितने ही अनोखे छन्द गूँजते हैं और उसकी लहरों की लोल लीला में न जाने कितने युगों के पुलकाकुल भावों का आवेग उफन-उफन आता है।

साँझ को महेंद्र जब उस यमुना के तट पर जा बैठा, तो प्रेम के आवेश ने उसकी नजरों में, साँसों में, नस-नस में, हड्डियों के बीच गाड़े मोह रस का संचार कर दिया आसमान में डूबने सूरज की किरणों किरणों की सुनहरी वीणा वेदना की मूर्च्छना से झरती जोत के संगीत से झंकृत हो उठी!

बारिश जैसा हो रहा था। नदी अपने उद्दाम यौवन में। महेंद्र के पास निर्दिष्ट कुछ नहीं था। उसे वैष्णव कवियों का वर्षाभिसार याद आया। नायिका बाहर निकली है; यमुना के किनारे वह अकेली खड़ी है। उस पार कैसे जाए? अरे ओ, पार करो, पार कर दो।' महेंद्र की छाती के अंदर यही पुकार पहुँचने लगी - 'पार करो'।

नदी से उस पार बड़ी दूर पर वह अभिसारिका खड़ी थी - फिर भी महेंद्र उसे साफ देख पाया। उसका कोई काल नहीं, उम्र नहीं, वह चिरंतन गोपबाला है, मगर महेंद्र ने उसे फिर भी पहचान लिया - पहचाना कि वह विनोदिनी है। सारा विरह, सारी वेदना यौवन का सारा भार लिए वह उस युग के अभिसार के लिए चली थी और आज के युग के किनारे आ निकली है। आज के इस सूने यमुना-तट के ऊपर आकाश में वही स्वर सुनाई पड़ रहा है। 'अरे ओ, पार करो, पार कर दो!'

महेंद्र मतवाला हो गया। विनोदिनी उसे ठुकरा देगी, चाँदनी रात के इस स्वर्ग-खंड को वह लक्ष्मी बन कर पूरा न करेगी, वह सोच भी नहीं सका। वह तुरंत उठ कर विनोदिनी को ढूँढ़ने चल दिया।

सोने के कमरे में गया। कमरा फूलों की खुशबू से महमहा रहा था। खुली खिड़कियों से छन कर चाँदनी सफेद बिछौने पर आ पड़ी थी। बगीचे के फूलों से सजी वह बसंत की बिखरी लता-जैसी चाँदनी में बिस्तर पर लेटी हुई थी।

महेंद्र का मोह दुगुना हो गया। उसने रुँधे गले से कहा - 'विनोद, मैं यमुना के तट पर तुम्हारी राह देख रहा था और तुम यहाँ इंतजार कर रही हो, यह संदेशा मुझे चाँद ने दिया। इसी से मैं यहाँ आ गया।'

यह कह कर महेंद्र बिस्तर पर बैठने ही जा रहा था कि विनोदिनी उठ बैठी और दायाँ हाथ बढ़ा कर बोली - 'जाओ; इस बिस्तर पर मत बैठो।' पाल वाली नाव मानो चौंर में अटक गई - महेंद्र कहा न माने, इसीलिए विनोदिनी बिस्तर से उतर कर खड़ी हो गई।

महेंद्र ने पूछा - 'तो तुम्हारा यह शृंगार किसके लिए है? किसका इंतजा कर रही हो?'

विनोदिनी ने अपनी छाती को दबा कर कहा - 'मैं जिसके लिए सजी-सँवरी, वह मेरे अंतस्तल में है।'

महेंद्र ने पूछा - 'आखिर कौन? बिहारी।'

विनोदिनी बोली - 'उसका नाम तुम अपनी जबान पर मत लाओ!'

महेंद्र - 'उसी के लिए तुम पछाँह का दौरा कर रही हो?'

विनोदिनी - 'हाँ, उसी के लिए।'

महेंद्र - 'उसका पता मालूम है?'

विनोदिनी - 'मालूम नहीं, मगर जैसे भी हो, मालूम करूँगी।'

महेंद्र - 'तुम्हें यह हर्गिज न मालूम होने दूँगा।'

विनोदिनी - 'न सही, मगर मेरे हृदय से उसे निकाल नहीं पाओगे।'

यह कह कर विनोदिनी ने आँखें बंद करके अपने हृदय में एक बार बिहारी का अनुभव कर लिया।

फूलों से सजी विरह-विधुरा विनोदिनी से एक साथ ही खिंच कर और ठुकराया जा कर महेंद्र अचानक भयंकर हो उठा; वह मुट्ठी कस कर बोला - 'छुरी से चीर कर मैं उसे तुम्हारे कलेजे से निकाल बाहर करूँगा।'

विनोदिनी ने दृढ़ता से कहा - 'तुम्हारे प्रेम से तुम्हारी यह छुरी मेरे हृदय में आसानी से घुस सकेगी।'

महेंद्र - 'तुम मुझसे डरती क्यों नहीं? यहाँ तुम्हें बचाने वाला कौन है?'

विनोदिनी - 'बचाने वाले तुम हो! तुम्हीं मुझे अपने से बचाओगे।'

महेंद्र - 'इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास अब भी है!'

विनोदिनी - 'यह न होता तो मैं खुदकुशी कर लेती, तुम्हारे साथ परदेस न आती।'

महेंद्र - 'क्यों न कर ली खुदकुशी? उस विश्वास की फाँस मेरे गले में डाल कर मुझे देश-देशांतर में घसीट कर क्यों मार रही हो? सोच देखो, तुम मर जाती तो कितना कल्याण होता!'

विनोदिनी - 'जानती हूँ, मगर जब तक बिहारी की उम्मीद है, मर न पाऊँगी।'

महेंद्र - 'जब तक तुम नहीं मरतीं, तब तक मेरी आशा भी नहीं मरने की, मैं भी छुटकारा नहीं पाने का। आज से मैं हृदय से भगवान से तुम्हारी मृत्यु की कामना करता हूँ। तुम मेरी भी न बनो, बिहारी की भी नहीं! जाओ, मुझे मुक्ति दो। मेरी माँ रो रही है, स्त्री रो रही है, उनके आँसू दूर से ही मुझे जला रहे हैं। जब तक तुम मर नहीं जातीं; मेरी और दुनिया-भर की आशा से परे नहीं हो जातीं, तब तक मुझे उनके आँसू पोंछने का अवसर नहीं मिलेगा।'

इतना कह कर महेंद्र बड़ी तेजी से बाहर निकल गया। अकेली पड़ी विनोदिनी अपने चारों तरफ माया का जाल बुन रही थी, उसे वह फाड़ गया। विनोदिनी खड़ी-खड़ी चुपचाप बाहर देखती रही - आकाश-भरी चाँदनी को खाली करके उसका सारा संचित अमृत कहीं चला गया? वह क्यारियों वाला बगीचा, उसके बाद रेती-भरा किनारा, उसके बाद नदी का काला-काला पानी, उसके बाद सारा पार का धुँधलापन - सब मानो एक सादे कागज पर पेंसिल का बना चित्र हो - नीरस, बेमानी।

उसने महेंद्र को किस बुरी तरह अपनी ओर खींचा है खौफनाक तूफान की तरह कैसे उसे जड़ समेत उखाड़ लिया है- यह अनुभव करके आज उसका हृदय मानो और भी बेचैन हो गया। उसमें यह सारी शक्ति तो है, फिर भी बिहारी पूर्णिमा की रात में उमड़े हुए समुद्र की तरह उसके सामने आ कर पछाड़ क्यों नहीं खाता? क्यों बे-मतलब प्यार की कचोट रोज उसके ध्यान में आ कर रोती है?

उसे लगा सब बेकार और निरर्थक है। इतनी व्यर्थता के बावजूद जो जहाँ है, वहीं खड़ा है - दुनिया में किसी बात का कोई कार्यक्रम नहीं। सूरज तो कल भी उगेगा और

दुनिया अपने छोटे-से काम को भी न भूलेगी। और बिहारी जैसे दूर रहा है, वैसे ही दूर रहेगा और उस ब्राह्मण के बच्चे को किताब का नया पाठ पढ़ाता रहेगा।

उसकी आँखों से आँसू फूट कर झरने लगे। अपनी इच्छा और शक्ति लिए वह किस पत्थर को ढकेल रही है? उसका हृदय लहू से नहा उठा, लेकिन उसकी तकदीर सुई की नोक के बराबर भी न खिसकी।

52.रात में महेंद्र सोया नहीं - थकावट के मारे सुबह-सुबह उसे नींद आई। सुबह आठ-नौ बजे के करीब जग कर वह झट उठ बैठा। पिछली रात की कोई अधूरी पीड़ा नींद के भीतर-ही-भीतर घूमती रही थी। सचेतन होते ही महेंद्र उसकी तकलीफ महसूस करने लगा। कुछ ही देर में रात की सारी घटना मन में जाग पड़ी। सुबह की उस धूप में, पूरी नींद न आ पाने की थकावट से सारी दुनिया और जिंदगी बड़ी सूखी-सी लगी। घर छोड़ने की ग्लानि, धर्म छोड़ने का परिताप और इस उद्भ्रांत जीवन की ये जिल्लतें आखिर वह किसके लिए झेल रहा है! मोह के आवेश से रहित सुबह की इस धूप में महेंद्र को लगा, वह विनोदिनी को प्यार नहीं करता। उसने रास्ते की ओर झाँका - सारी दुनिया परेशान-सी काम के पीछे भाग रही है और आत्म-गौरव को कीचड़ में डुबो कर एक बेरुखी औरत के पैरों से लिपटे रहने की जो नादानी है, वह महेंद्र की निगाहों में स्पष्ट हो उठी। आवेग के किसी बड़े झोंके के बाद हृदय में अवसाद आता है, ऐसे वक्त थका-हारा हृदय अनुभूति के विषय को कुछ समय के लिए दूर हटाना चाहता है। भावों का ऐसा भाटा पड़ने के समय नीचे की सारी छिपी हुई गन्दगी ऊपर आ जाती है-मोह लाने वाली वस्तु से विरक्त हो आती है। महेन्द्र क्यों अपने को इस तरह अपमानित कर रहा है, इसे वह आज न समझ सका। उसने सोचा, 'मैं हर तरह से विनोदिनी से बेहतर हूँ, फिर भी सब प्रकार की हीनता और झिड़कियाँ बर्दास्त करता हुआ घिनौने भिखमंगे-सा उसके पीछे मारा-मारा फिर रहा हूँ-ऐसा अजीब पागलपन किस शैतान ने मेरे दिमाग में भर दिया है।' आज विनोदिनी महेन्द्र के लिए महज एक औरत रह गई, और कुछ नहीं; उसके लिए चारों तरफ फैली धरती की सुषमा से, काव्यों से, कहानियों से लावण्य की जो एक ज्योति खिंच आई थी, उसकी माया-मरीचिका के गायब होते ही वह एक मामुली नारी-मात्र हो रही-उसका कोई अनोखापन न रहा।

फिर तो धिक्कार के इस मार-चक्र से अपने को छुड़ा कर घर जाने के लिए महेंद्र ललक उठा, बिहारी को निर्भर करने योग्य अडिग मिताई बड़ी बेशकीमती लगने लगी। महेंद्र मन-ही-मन कह उठा - 'जो वास्तव, गंभीर और स्थायी होता है, उसमें

अनायास, बाधा-विहीन-सा अपने को पूरी तरह खोया जा सकता है, इसीलिए उसके गौरव को हम नहीं समझते। जो महज धोखा है, जिसकी तृप्ति में भी सुख का नाम नहीं, चूँकि वह हमें अपने पीछे घुड़दौड़-सी कराता है, इसलिए हम उसे अपनी चरम कामना का धन समझते हैं।'

महेंद्र ने तय किया - 'मैं आज ही अपने घर जाऊँगा। विनोदिनी जहाँ भी रहना चाहेगी, वहीं उसका इंतजाम करके मैं मुक्त हो जाऊँगा '- यह जोर से उच्चारण करते ही उसके मन में एक आनंद का उदय हुआ। लगातार दुविधा का जो भार वह ढोता चला आ रहा था, हल्का हो गया। अब तक होता ऐसा रहा कि अभी-अभी जो बात उसे रुचती न थी, दूसरे ही क्षण उसे मानने को मजबूर होना पड़ता था, हाँ-ना कहते न बनता; उसकी अंतरात्मा उसे जो आदेश देती, सदा बलपूर्वक उसे दबा कर वह दूसरी ही राह पर चला करता। अभी जैसे ही उसने जोर से कहा - 'मैं मुक्त हो जाऊँगा' - वैसे ही शरण पा कर उसके झकझोरे हुए हृदय ने उसे बधाई दी।

महेंद्र बिस्तर से उठा, मुँह-हाथ धोया और विनोदिनी से मिलने गया। देखा, कमरा अंदर से बंद है। दरवाजे पर धक्का दे कर पूछा - 'सो रही हो?'

विनोदिनी बोली **-** 'नहीं, अभी जाओ!'

महेंद्र ने कहा - 'तुमसे जरूरी बात करनी है। ज्यादा देर न रुकूँगा।'

विनोदिनी बोली - 'बात अब मैं नहीं सुनना चाहती, तुम जाओ, मुझे तंग मत करो- अकेली रहने दो।'

और दिन होता, तो इससे महेंद्र का आवेग और बढ़ ही जाता। लेकिन आज उसे बेहद घृणा हुई। सोचा, इस मामूली औरत के आगे अपने-आपको मैंने ऐसा गया-बीता बना छोड़ा है कि अब उसमें मुझे बुरी तरह दुत्कार कर दूर कर देने की हिम्मत हो गई है? यह अधिकार इसका स्वाभाविक नहीं। मैंने ही यह अधिकार दे कर इसके मिजाज को सातवें आसमान पर पहुँचा दिया है।

विनोदिनी की इस झिड़की से महेंद्र ने अपने में अपनी श्रेष्ठता के अनुभव की कोशिश की। उसके मन ने कहा - 'मैं विजयी होऊँगा - इसके बंधन तोड़ कर चला जाऊँगा।' भोजन करके महेंद्र रुपया निकालने बैंक गया। रुपया निकाला और आशा तथा माँ के लिए कुछ नई चीजें खरीदने के खयाल से वह बाजार की दुकानों में घूमने लगा।

विनोदिनी के दरवाजे पर एक बार फिर धक्का पड़ा। पहले तो आजिजी से उसने कोई जवाब ही न दिया; लेकिन जब बार-बार धक्का पड़ने लगा तो आग-बबूला हो कर दरवाजा खोलते हुए उसने कहा - 'नाहक क्यों बार-बार मुझे तंग करने आते हो तुम?'

बात पूरी करने के पहले ही उसकी नजर पड़ी - बिहारी खड़ा था। कमरे में महेंद्र है या नहीं, यह देखने के लिए बिहारी ने एक बार भीतर की तरफ झाँका। देखा, कमरे में सूखे फूल और टूटी मालाएँ बिखरी पड़ी थीं। उसका मन जबर्दस्त ढंग से विमुख हो उठा। यह नहीं कि बिहारी जब दूर था, तो उसके मन में विनोदिनी के रहन-सहन के बारे में संदेह का कोई चित्र आया ही नहीं, लेकिन कल्पना की लीला ने उस चित्र को ढककर भी एक दमकती हुई मोहिनी छवि खड़ी कर रखी थी। बिहारी जिस समय इस बगीचे में कदम रख रहा था, उस समय उसका दिल धड़कने लगा था - कल्पना की प्रतिमा को कहीं चोट न पहुँचे इस आंशका से उसका हृदय संकुचित हो रहा था। और विनोदिनी के सोने के कमरे के द्वार पर खड़े होते ही वही चोट लगी।

दूर रहते हुए बिहारी ने सोचा था कि अपने प्रेम के अभिषेक से मैं विनोदिनी के जीवन की सारी कालिमा को धो दूँगा। लेकिन पास आ कर देखा, यह आसान नहीं। मन में करुणा की वेदना कहाँ उपजी? बल्कि एकाएक घृणा ने जग कर उसे अभिभूत कर दिया। बिहारी ने उसे बड़ा मलिन देखा।

वह तुरंत मुड़ कर खड़ा हो गया और उसने 'महेंद्र -महेंद्र' कह कर पुकारा। इस अपमान से विनोदिनी ने नम्र स्वर में कहा - 'महेंद्र नहीं है, शहर गया है।'

बिहारी लौटने लगा। विनोदिनी बोली - 'भाई साहब, मैं पैर पड़ती हूँ, जरा देर बैठना पड़ेगा।'

बिहारी ने सोच रखा था, वह कोई आरजू-मिन्नत नहीं सुनेगा। तय कर लिया था कि नफरत के इस नजारे से तुरंत अपने को अलग कर लेगा। लेकिन विनोदिनी की करुण विनती से उसके कदम क्षण-भर के लिए उठ न सके।

विनोदिनी बोली **-** 'आज अगर तुम मुझे इस तरह ठुकरा कर चल दिए, तो तुम्हारी कसम खा कर कहती हूँ, मैं मर जाऊँगी।'

बिहारी पलट कर खड़ा हो गया**,** बोला - 'तुम अपने जीवन से मुझे जकड़ने की कोशिश क्यों करती हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मैं तो कभी तुम्हारी राह में नहीं आया, तुम्हारे सुख-दु:ख में कभी दखल नहीं दिया।'

विनोदिनी बोली - 'तुमने मुझ पर कितना अधिकार कर रखा है, एक बार तुमसे कहा था मैंने - तुमने विश्वास नहीं किया। तो भी तुम्हारी बेरुखी में भी फिर वही कहती हूँ। बिना बोले जताने का शर्म से बताने का मौका तो तुमने मुझे दिया नहीं। तुमने मुझे पैरों से झटक दिया है, मैं फिर भी तुम्हारे पाँव पकड़ कर कहती हूँ - मैं तुम्हें...'

बिहारी ने टोकते हुए कहा - 'बस-बस, रहने दो, यह बात जबान पर मत लाओ। एतबार की गुंजाइश नहीं रही।'

विनोदिनी - 'इतर लोग इस पर विश्वास न करें, पर तुम करोगे। इसीलिए मैं तुम्हें जरा देर बैठने को कह रही हूँ।'

बिहारी - 'मेरे विश्वास करने, न करने से क्या आता-जाता है। तुम्हारी जिंदगी तो जैसी चल रही है, चलती रहेगी।'

विनोदिनी - 'इससे तुम्हारा कुछ आता-जाता नहीं, मैं जानती हूँ। अपना नसीब ही ऐसा है कि तुमसे मुझे सदा दूर ही रहना होगा। बस मैं केवल इतना हक नहीं छोड़ना चाहती कि मैं चाहे जहाँ रहूँ, मुझे जरा माधुर्य के साथ याद करना। मुझे मालूम है, मुझ पर तुम्हें थोड़ी-सी श्रद्धा हुई थी, मैं उसी को अपना अवलंब बनाए रहूँगी। इसीलिए मेरी पूरी बात तुम्हें सुननी होगी। मैं हाथ जोड़ती हूँ, जरा देर बैठो!'

'अच्छा चलो!' कह कर बिहारी उस कमरे से और कहीं जाने को तैयार हुआ।

विनोदिनी बोली - 'भाई साहब, जो सोच रहे हो, वह बात नहीं है। इस कमरे को कलंक की छाया नहीं छू सकी है। कभी यहाँ सोए थे - इसे मैंने तुम्हारे ही लिए उत्सर्ग करके रखा है। सूखे पड़े ये फूल तुम्हारी ही पूजा के हैं। तुम्हें यहीं बैठना होगा।'

सुन कर बिहारी के मन में पुलक का संचार हुआ। वह कमरे में गया। विनोदिनी ने दोनों हाथों से उसे खाट का इशारा किया। बिहारी खाट पर बैठा। विनोदिनी उसके पैरों के पास जमीन पर बैठी। विनोदिनी ने बिहारी को व्यस्त होते देख कर कहा - 'तुम बैठो, भाई साहब! सिर की कसम तुम्हें, उठना मत। मैं तुम्हारे पैरों के पास भी बैठने लायक नहीं - दया करके ही तुमने मुझे यह जगह दी है। दूर रहूँ, तो भी इतना अधिकार मैं रखूँगी।'

यह कह कर विनोदिनी जरा देर चुप रही। उसके बाद अचानक चौंक कर बोली - 'तुम्हारा खाना?'

बिहारी बोला - 'स्टेशन से खा कर आया हूँ।'

विनोदिनी - 'मैंने गाँव से तुम्हें जो पत्र दिया था, उसे खोल कर पढ़ा और कोई जवाब न दे कर उसे महेंद्र की मार्फत लौटा क्यों दिया?'

बिहारी - 'कहाँ, वह चिट्ठी तो मुझे नहीं मिली।'

विनोदिनी - 'इस बार कलकत्ता में महेंद्र से तुम्हारी भेंट हुई थी।'

बिहारी - 'तुम्हें गाँव पहुँचा कर लौटा, उसके दूसरे दिन भेंट हुई थी। उसके बाद मैं पछाँह की ओर सैर को निकल पड़ा, उससे फिर भेंट नहीं हुई।'

विनोदिनी - 'उससे पहले और एक दिन मेरी चिट्ठी पढ़ कर बिना उत्तर के वापिस कर दी?'

बिहारी - 'नहीं, ऐसा कभी नहीं हुआ।'

विनोदिनी बुत-सी बैठी रही। उसके बाद लंबी साँस छोड़ कर बोली - 'सब समझ गई। अब अपनी बात बताऊँ - मगर यकीन करो तो अपनी खुशकिस्मती समझूँ और न कर सको तो तुमको दोष न दूँगी। मुझ पर यकीन करना मुश्किल है।'

बिहारी का हृदय पसीज गया। भक्ति से झुकी विनोदिनी की पूजा का वह किसी भी तरह अपमान न कर सका। बोला - 'भाभी, तुम्हें कुछ कहना न पडेगा।। बिना कुछ सुने ही मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ। मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकता। तुम अब एक भी शब्द न कहना!'

सुन कर विनोदिनी की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने बिहारी के चरणों की धूल ली। बोली - 'सब न सुनोगे, तो मैं जी न सकूँगी। थोड़ा धीरज रख कर सुनना होगा - तुमने मुझे जो आदेश दिया था, मैंने उसी को सिर माथे उठा लिया था। तुमने मुझे पत्र तक न लिखा, तो भी अपने गाँव में मैं लोगों की निंदा सहकर जिंदगी बिता देती, तुम्हारे स्नेह के बदले तुम्हारे शासन को ही स्वीकार करती - लेकिन विधाता उसमें भी वाम हुए। जिस पाप को मैंने जगाया, उसने मुझे निर्वासन में भी न टिकने दिया। महेंद्र वहाँ पहुँचा, मेरे घर पर जा कर उसने सबके सामने मेरी मिट्टी पलीद की। गाँव में मेरे लिए जगह न रह गई। मैंने दुबारा तुम्हें बेहद तलाशा कि तुम्हारा आदेश लूँ, पर तुमको न पा सकी। मेरी खुली चिट्टी तुम्हारे यहाँ से ला कर मुझे देते हुए महेंद्र ने धोखा दिया। मैंने समझा, तुमने मुझे एकबारगी त्याग दिया। इसके बाद मैं बिलकुल

नष्ट हो सकती थी - मगर पता नहीं तुममें क्या है, तुम दूर रह कर भी बचा सकते हो। मैंने दिल में तुम्हें जगह दी है, इसी से पवित्र रह सकी। कभी तुमने मुझे ठुकराकर अपना जो परिचय दिया था, तुम्हारा वही कठिन परिचय सख्त सोने की तरह, ठोस मणि की तरह मेरे मन में है, उसने मुझे मूल्यवान बनाया है। देवता, तुम्हारे पैर छू कर कहती हूँ, वह मूल्य नष्ट नहीं हुआ है।'

बिहारी चुप रहा। विनोदिनी भी और कुछ न बोली। तीसरे पहर की धूप पल-पल पर फीकी पड़ने लगी। ऐसे समय महेंद्र दरवाजे पर आया और बिहारी को देख कर चौंक पड़ा। विनोदिनी के प्रति उसमें जो उदासीनता आ रही थी, ईर्ष्या से वह जाने-जाने को हो गई। विनोदिनी को बिहारी के पाँवों के पास बैठी देख कर ठुकराए हुए महेंद्र को चोट पहुँची।

व्यंग्य के स्वर में महेंद्र ने कहा - 'तो अब रंगमंच से महेंद्र का प्रस्थान हुआ, बिहारी का प्रवेश! दृश्य बेहतरीन है। तालियाँ बजाने को जी चाहता है। लेकिन उम्मीद है, यही अंतिम अंक है। इसके बाद अब कुछ भी अच्छा न लगेगा।'

विनोदिनी का चेहरा तमतमा उठा। महेंद्र की शरण जब उसे लेनी पड़ी है, तो इस अपमान का क्या जवाब दे, व्याकुल हो कर उसने केवल बिहारी की ओर देखा।

बिहारी खाट से उठा। बोला - 'महेंद्र, कायर की तरह विनोदिनी का यों अपमान न करो - तुम्हारी भलमनसाहत अगर तुम्हें नहीं रोकती, तो रोकने का अधिकार मुझको है।'

महेंद्र ने हँस कर कहा - 'इस बीच अधिकार भी हो गया? आज तुम्हारा नया नामकरण है - विनोदिनी!'

अपमान करने का हौसला बढ़ता ही जा रहा है, यह देख कर बिहारी ने महेंद्र का हाथ दबाया। कहा - 'महेंद्र, मैं विनोदिनी से ब्याह करूँगा, सुन लो! लिहाजा संयत हो कर बात करो।'

महेंद्र अचरज के मारे चुप हो गया और विनोदिनी चौंक उठी। उसकी छाती के अंदर का लहू खलबला उठा।

बिहारी ने कहा - 'और एक खबर देनी है तुम्हें। तुम्हारी माँ मृत्युसेज पर हैं। बचने की कोई उम्मीद नहीं। मैं आज रात को ही गाड़ी से जाऊँगा - विनोदिनी भी मेरे साथ जाएगी।'

विनोदिनी ने चौंक कर पूछा - 'बुआ बीमार हैं?'

बिहारी बोला - 'हाँ, सख्त। कब क्या हो जाए कुछ कहा नहीं जा सकता।'

यह सुन कर महेंद्र ने और कुछ न कहा! चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।

विनोदिनी ने बिहारी से पूछा - 'अभी-अभी तुमने जो कहा, तुम्हारी जुबान पर यह बात कैसे आई? मजाक तो नहीं?'

बिहारी बोला - 'नहीं, मैंने ठीक ही कहा है। मैं तुमसे ब्याह करूँगा।'

विनोदिनी - 'किसलिए? उद्धार करने के लिए।'

बिहारी - 'नहीं, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, इसलिए।'

विनोदिनी - 'यही मेरा पुरस्कार है। इतना-भर स्वीकार किया, मेरे लिए यही बहुत है, इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं चाहती। ज्यादा मिले भी तो रहने का नहीं।'

बिहारी - 'क्यों?'

विनोदिनी - 'वह सोचते हुए भी शर्म आती है। मैं विधवा हूँ, बदनाम हूँ- सारे समाज के सामने तुम्हारी फजीहत करूँ, यह हर्गिज नहीं होगा। छि:, यह बात जबान पर न लाओ।'

बिहारी - 'तुम मुझे छोड़ दोगी?'

विनोदिनी - 'छोड़ने का अधिकार मुझे नहीं। चुपचाप तुम बहुतों की बहुत भलाई किया करते हो - अपने वैसे ही किसी व्रत का कोई-सा भार मुझे देना, उसी को ढोती हुई मैं अपने-आपको तुम्हारी दासी समझा करूँगी। लेकिन विधवा से तुम ब्याह करोगे, छि:! तुम्हारी उदारता से सब-कुछ मुमकिन है, लेकिन मैं यह काम करूँ, समाज में तुम्हें नीचा करूँ तो जिंदगी में यह सिर कभी उठा न सकूँगी।'

बिहारी - 'मगर मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।'

विनोदिनी - 'उसी प्यार के अधिकार से आज मैं एक ढिठाई करूँगी।'

इतना कह कर विनोदिनी झुकी। उसने पैर की उँगली को चूम लिया। पैरों के पास बैठ कर बोली - 'तुम्हें अगले जन्म में पा सकूँ, इसके लिए मैं तपस्या करूँगी। इस जन्म में अब कोई उम्मीद नहीं। मैंने बहुत दु:ख उठाया - काफी सबक मिला। यह सबक अगर भूल बैठती, तो मैं तुम्हें नीचा दिखा कर और भी नीची बनती। लेकिन तुम ऊँचे हो, तभी आज मैं फिर से सिर उठा सकी हूँ- अपने इस आश्रय को मैं धूल में नहीं मिला सकती।'

बिहारी गंभीर हो रहा।

विनोदिनी ने हाथ जोड़ कर कहा - 'गलती मत करो - मुझसे विवाह करके तुम सुखी न होगे, अपना गौरव गँवा लोगे - मैं भी अपना गर्व खो बैठूँगी। तुम सदा निर्लिप्त रहो, प्रसन्न रहो। आज भी तुम वही हो - मैं दूर से ही तुम्हारा काम करूँगी। तुम खुश रहो, सदा सुखी रहो।'

53.महेंद्र माँ के कमरे में जा रहा था कि आशा दौड़ी-दौड़ी आई। कहा - 'अभी वहाँ मत जाओ!'

महेंद्र ने पूछा - 'क्यों?'

आशा बोली - 'डॉक्टर ने बताया है, माँ, चाहे दु:ख का हो चाहे सुख का - अचानक कोई धक्का लगने से आफत हो सकती है।'

महेंद्र बोला - मैं दबे पाँवों उनके सिरहाने की तरफ जा कर एक बार देख आऊँ जरा। उन्हें पता न चलेगा।'

आशा - 'नहीं, अभी आप माँ से नहीं मिल सकते।'

महेंद्र - 'तो तुम करना क्या चाहती हो?'

आशा - 'पहले बिहारी बाबू उन्हें देख आएँ, वे जैसा कहेंगे, वही करूँगी।'

इतने में बिहारी आ गया। आशा ने उसे बुलवाया था।

बिहारी को देख कर आशा को थोड़ा भरोसा हुआ। बोली - 'तुम्हारे जाने के बाद से माँ और भी अकुला उठी हैं, भाई साहब। पहले दिन जब तुम न दिखाई पड़े तब उन्होंने

पूछा - 'बिहारी कहाँ गया?' मैंने कहा - 'वे एक जरूरी काम से बाहर गए हैं। बृहस्पति तक लौट आएँगे।' उसके बाद से वे रह-रह कर चौंक-चौंक पड़ती हैं। मुँह से कुछ नहीं कहतीं लेकिन अंदर-ही-अंदर मानो किसी की राह देख रही हैं। कल तुम्हारा तार मिला। मैंने उन्हें बताया, तुम आ रहे हो। उन्होंने आज तुम्हारे लिए खास तौर से खाने का इंतजाम करवाने को कहा है। तुम्हें जो-जो चीजें अच्छी लगती हैं, सब मँगवाई हैं, सामने बरामदे पर रसोई का प्रबंध कराया है, अंदर से वह खुद बनाती रहेंगी। डॉक्टर ने लाख मना किया, एक न सुनी। अभी-अभी जरा देर पहले मुझे बुला कर कहा, 'बहू, रसोई तुम अपने हाथों बनाना, आज बिहारी को मैं अपने सामने बैठा कर खि लाऊँगी'।

सुनते ही बिहारी की आँखें छलछला उठीं। पूछा **-** 'माँ हैं कैसी?'

आशा ने कहा - 'तुम खुद चल कर देखो, मुझे तो लगता है, बीमारी और बढ़ गई है।'

बिहारी अंदर गया। महेंद्र खड़ा अचरज में पड़ गया। आशा ने मजे में गृहस्थी सम्हाल ली है - कितनी आसानी से महेंद्र को अंदर जाने से रोक दिया। न संकोच किया, न रूठी।

महेंद्र आज कितना सकुचा गया है! वह अपराधी है - चुपचाप खड़ा रहा, बाहर। माँ के कमरे में न घुस सका।

फिर भी यह अजीब बात - बिहारी से वह कैसे बे-खटके बोली। सलाह-परामर्श सब उसी से। वही आज इस घर का सबसे बड़ा शुभचिंतक है, एकमात्र रक्षक है। उसको कहीं रोक नहीं, उसी के निर्देश पर सब-कुछ चलता है। कुछ दिनों के लिए महेंद्र जो स्थान छोड़ कर चला गया था, लौट कर देखा, वह स्थान अब ठीक वैसा ही नहीं है।

बिहारी के अंदर जाते ही राजलक्ष्मी ने पूछा - 'तू आ गया, बेटे?'

बिहारी बोला - 'हाँ माँ, लौट आया।'

राजलक्ष्मी ने पूछा - 'काम हो गया तेरा?'

खुश हो कर बिहारी बोला - 'हाँ माँ, हो गया। अब मुझे कोई चिंता नहीं रही।'

और उसने एक बार बाहर की तरफ देखा।

राजलक्ष्मी- 'बहू आज तेरे लिए खुद खाना पकाए गी- मैं यहाँ से उसे बताती जाऊँगी। डॉक्टर ने मना किया है - मगर अब काहे की मनाही, बेटे! मैं क्या इन आँखों से एक बार तुम लोगों का खाना भी न देख पाऊँगी!'

बिहारी ने कहा - 'डॉक्टर के मना करने की बात तो समझ में नहीं आती - तुम न बताओगी तो चलेगा कैसे? छुटपन से तुम्हारे हाथ की ही रसोई हमें भाई है - महेंद्र भैया का जी तो पश्चिम की दाल-रोटी से ऊब गया है - तुम्हारे हाथ की बनाई मछली मिलेगी, तो वह जी जाएगा। आज हम दोनों भाई जैसे बचपन में करते थे, होड़ लगा कर खाएँगे। तुम्हारी बहू जुटा सके, तब जानो।'

राजलक्ष्मी समझ तो गई थीं कि बिहारी के साथ महेंद्र आया है, फिर भी उनकी धड़कन बढ़ गई।

बिहारी ने कहा **-** 'पछाँह जा कर महेंद्र की सेहत बहुत-कुछ सुधर गई है। आज सफर से आया है, इसलिए थका-माँदा लगता है। नहाने से ठीक हो जाएगा।'

राजलक्ष्मी ने फिर भी महेंद्र के बारे में कुछ न कहा। इस पर बिहारी ने कहा - 'माँ, महेंद्र बाहर ही खड़ा है। जब तक तुम नहीं बुलाओगी वह नहीं आएगा।'

राजलक्ष्मी कुछ बोलीं नहीं, सिर्फ दरवाजे की तरफ नजर उठाई। उनका उधर देखना था कि बिहारी ने कहा -'महेंद्र भैया, आ जाओ!'

महेंद्र धीरे-धीरे अंदर आया। कलेजे की धड़कन कहीं एकाएक थम जाए, इस डर से राजलक्ष्मी तुरंत महेंद्र की ओर न देख सकीं। आँखें अधमुँदी रहीं। बिस्तर की तरफ ताक कर महेंद्र चौंक उठा। उसे मानो किसी ने पीटा हो।

माँ के पैरों के पास सिर रख कर उनका पैर पकड़े पड़ा रहा। कलेजे की धड़कन से राजलक्ष्मी का सर्वांग काँपता रहा। कुछ देर बाद अन्न्पूर्णा ने धीमे से कहा - 'दीदी, तुम महेंद्र को कहो कि वह उठे, नहीं तो वह यहीं बैठा रहेगा।'

बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा - 'महेंद्र, उठ!' बहुत दिनों के बाद महेंद्र का जो नाम लिया तो उनकी आँखों से आँसू की धारा फूट पड़ी। आँसू बहने से मन की पीड़ा कुछ हल्की हुई। महेंद्र उठा, जमीन पर घुटना गाड़, खाट की पाटी पर छाती रख कर माँ के पास बैठा। राजलक्ष्मी ने बड़ी तसल्ली से करवट बदली। दोनों हाथों से अपनी ओर खींच कर उन्होंने महेंद्र का सिर सूँघा, और ललाट को चूम लिया।

महेंद्र ने रुँधे कंठ से कहा - 'मैंने तुम्हें बड़ी तकलीफ पहुँचाई है, माँ मुझे माफ करो।'

कलेजा ठंडा हुआ तो राजलक्ष्मी ने कहा - 'ऐसा मत कह बेटे, तुझे माफ किए बिना मैं जी सकती हूँ भला! बहू कहाँ गई? बहू!'

आशा पास ही दूसरे कमरे में पथ्य तैयार कर रही थी। अन्नपूर्णा उसे बुला लाईं।

राजलक्ष्मी ने महेंद्र को जमीन पर से उठ कर बिस्तर पर बैठने का इशारा किया। महेंद्र बैठा, तो उसके बगल की जगह दिखाती हुई राजलक्ष्मी ने कहा -'तुम यहाँ बैठो, बहू! आज तुम दोनों को मैं पास-पास बिठा कर देख लूँ, तभी मेरी तकलीफ मिटेगी। बहू, आज मुझसे शर्म न करो! महेंद्र के लिए जो मलाल है, उसे भी भुला दो। उसके पास बैठो।

इस पर आशा घूँघट निकाले धड़कते दिल से लजाती हुई आ कर महेंद्र के पास बैठ गई। राजलक्ष्मी ने महेंद्र का दाहिना हाथ लिया और आशा के दाहिने हाथ से मिला कर दबाया। बोली - 'अपनी इस बिटिया को मैं तेरे हाथों सौंप जाती हूँ, महेंद्र - इसका खयाल रखना, ऐसी लक्ष्मी तुझे और कहीं नहीं मिलेगी। मँझली आओ, दोनों को आशीर्वाद दो, तुम्हारे पुण्य से ही दोनों का मंगल हो।'

अन्नपूर्णा उनके सामने गईं। दोनों ने आँसू-भरे नेत्रों से उनके चरणों की धुल ली। उन्होंने दोनों के माथे को चूमा - 'ईश्वर तुम्हारा मंगल करे!'

राजलक्ष्मी - 'बिहारी, आगे आओ बेटे, महेंद्र को तुम माफी दो।'

बिहारी ज्यों ही महेंद्र के सामने जा कर खड़ा हुआ, उसने उसे बाँहों में लपेट कर कस कर छाती से लगा लिया।

राजलक्ष्मी ने कहा - 'मैं आशीर्वाद देती हूँ महेंद्र, बिहारी छुटपन से तेरा जैसा मित्र था, सदा वैसा ही रहे।'

इसके बाद राजलक्ष्मी थकावट के मारे और कुछ न कह सकीं। चुप हो गईं। बिहारी कोई उत्तेजक दवा उनके होंठों तक ले गया। हाथ हटा कर राजलक्ष्मी ने कहा - 'अब दवा नहीं बेटे, अब मैं भगवान को याद करूँ - वही मुझे दुनिया की सारी जलन की दवा देंगे। महेंद्र, तुम लोग थोड़ा आराम कर लो बेटे! बहू, रसोई चढ़ा दो!'

शाम को महेंद्र और बिहारी राजलक्ष्मी की खाट के पास नीचे खाने बैठे। परोसने का जिम्मा राजलक्ष्मी ने आशा को दे रखा था। वह परोसने लगी।

महेंद्र का कौर नहीं उठ रहा था, कलेजे में आँसू उमड़े आ रहे थे। राजलक्ष्मी बोलीं - 'तू ठीक से खा क्यों नहीं रहा है, महेंद्र? खा, मैं आँखें भर कर देखूँ।'

बिहारी ने कहा - 'तुम तो जानती ही हो माँ, महेंद्र भैया का सदा का यही हाल है। वह खा नहीं सका। भाभी, जरा यह घंटो थोड़ा-सा और दो मुझे, बेहतरीन बना है।'

खुश हो कर राजलक्ष्मी जरा हँसी... 'मुझे मालूम है, बिहारी को यह बेहद पसंद है। बहू, भला उतने से क्या होगा, और दो।'

बिहारी बोला - 'तुम्हारी यह बहू अहले दर्जे की कंजूस है। इसके हाथ से कुछ निकलता ही नहीं।'

राजलक्ष्मी बोलीं - 'सुन लो बहू, तुम्हारा ही नमक खा कर बिहारी तुम्हारी ही निंदा करता है।'

आशा बिहारी की पत्तल में सब्जी डाल गई।

बिहारी बोल उठा - 'हाय राम, मुझे तो सब्जी दे कर ही धता बतानी चाहती है, अच्छी-अच्छी चीजें सब महेंद्र भैया के हिस्से।'

आशा फुस-फुसा कर कह गई - 'कुछ भी करो, निंदक की जबान बंद नहीं होने की।'

बिहारी बोला - 'मिठाई दे कर देखो, बंद होती है या नहीं।'

दोनों दोस्त खा चुके तो राजलक्ष्मी को बड़ी तृप्ति मिली। बोलीं - 'बहू, अब तुम जा कर खा लो।'

आशा उनके हुक्म पर खाने चली गई। उन्होंने महेंद्र से कहा - 'तू थोड़ा सो ले, महेंद्र!'

महेंद्र बोला - 'सो जाऊँ अभी से!'

महेंद्र ने सोच रखा था, रात को वह माँ की सेवा में रहेगा। मगर राजलक्ष्मी ने धीमे से कहा - 'बहू, देख जाओ कि महेंद्र का बिस्तर ठीक भी है या नहीं। वह अकेला है।'

आशा लाज के मारे मरी-सी किसी तरह कमरे से बाहर चली गई। वहाँ केवल बिहारी और अन्न्पूर्णा रह गए।

तब राजलक्ष्मी ने कहा - 'तुमसे एक बात पूछनी है, बिहारी। विनोदिनी का क्या हुआ, पता है। कहाँ है वह?'

बिहारी ने कहा - 'वह कलकत्ता में है।'

राजलक्ष्मी ने आँखों की मौन दृष्टि से ही प्रश्न किया। बिहारी समझ गया।

बोला - 'उसकी तुम अब फिक्र ही न करो, माँ!'

राजलक्ष्मी बोलीं- 'उसने मुझे बहुत दुख दिया है बिहारी, फिर भी मैं अंदर से उसे प्यार करती हूँ।'

बिहारी बोला - 'वह भी मन-ही-मन तुम्हें प्यार करती है, माँ!'

राजलक्ष्मी - 'मुझे भी यही लगता है, बिहारी। दोष-गुण सब में होता है, लेकिन वह मुझे प्यार करती थी। ढोंग करके कोई उस तरह की सेवा नहीं कर सकती।'

बिहारी बोला - 'तुम्हारी सेवा करने के लिए वह तड़प रही है।'

राजलक्ष्मी ने लंबी साँस ली। कहा - 'महेंद्र, आशा, सब तो सोने चले गए। रात में उसे एक बार ले आओ तो क्या हर्ज है?'

बिहारी ने कहा - 'वह तो इसी घर के बाहर वाले कमरे में छिपी बैठी है, माँ। उसने प्रतिज्ञा की है कि जब तक तुम उसे बुला कर माफ नहीं कर दोगी, वह पानी भी न पिएगी।'

राजलक्ष्मी परेशान हो उठीं। बोलीं- 'सारे दिन से भूखी है? अरे तो जा उसे बुला लो!'

ज्यों ही विनोदिनी कमरे में आई, राजलक्ष्मी बोल उठीं - 'राम-राम, तुमने यह किया क्या बहू, दिन-भर बे-खाए-पिए बैठी हो। जाओ, पहले खा लो, फिर बातचीत होगी।'

विनोदिनी ने उनके चरणों की धूल ली। बोली - 'पहले इस पापिन को तुम माफ करो बुआ, तभी मैं खाऊँगी।'

राजलक्ष्मी - 'माफ कर दिया बिटिया, माफ कर दिया - अब मुझे किसी से भी कोई मलाल नहीं।'

विनोदिनी का दाहिना हाथ पकड़ कर उन्होंने कहा -'बहू, तुमसे जीवन में किसी का बुरा न हो और तुम भी सुखी रहो!'

विनोदिनी - 'तुम्हारा आशीर्वाद झूठा न होगा बुआ, मैं तुम्हारे पाँव छू कर कहती हूँ, मुझसे इस घर का बुरा न होगा।'

झुक कर अन्नपूर्णा को प्रणाम करके विनोदिनी खाने गई। लौटने पर राजलक्ष्मी ने पूछा - 'तो अब तुम चलीं?'

विनोदिनी - 'मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, बुआ। ईश्वर साक्षी है, मुझसे किसी बुराई की शंका न करो।'

राजलक्ष्मी ने बिहारी की तरफ देखा। बिहारी ने कुछ सोचा। फिर कहा - 'भाभी रहें, कोई हर्ज नहीं।'

रात में बिहारी, अन्नपूर्णा और विनोदिनी - तीनों ने मिल कर राजलक्ष्मी की सेवा की।

इधर रात को आशा राजलक्ष्मी के पास नहीं आई, इस शर्म से वह तड़के ही उठी। महेंद्र को सोता ही छोड़ कर उसने जल्दी से मुँह धोया, कपड़े बदले और तैयार होते ही आई। तब भी धुँधलका था। दरवाजे पर आ कर उसने जो कुछ देखा, वह अवाक् रह गई। स्वप्न तो नहीं!

स्पिरिट-लैंप जला कर विनोदिनी पानी गरम कर रही थी। रात को बिहारी ने पलकें भी न झपकाई थीं। उनके लिए चाय बनानी थी।

आशा को देख कर विनोदिनी खड़ी हो गई। बोली - 'सारे अपराधों के साथ मैंने आज तुम्हारी शरण ली है - और कोई तो जाने की न कह सकेगा, मगर तुम अगर कह दो, 'जाओ', तो मुझे तुरंत जाना पड़ेगा।'

आशा कोई जवाब न दे सकी। वह यह भी ठीक-ठीक न समझ सकी कि उसका मन क्या कह रहा है - इसलिए वह हक्की-बक्की हो गई।

विनोदिनी - 'मुझे तुम कभी माफ नहीं कर पाओगी - इसकी कोशिश भी मत करना। मगर मुझे अब कोई खतरा मत समझना। जिन कुछ दिनों के लिए बुआ को जरूरत है, मुझे इनकी सेवा करने दो, फिर मैं चली जाऊँगी।'

कल जब राजलक्ष्मी ने आशा का हाथ महेंद्र के हाथों में दिया तो उसने मन का सारा मलाल हटा कर सोलहों आने आशा को महेंद्र के हाथों सौंप दिया था। आज विनोदिनी को अपनी नजर के सामने खड़ी देख कर उसके खंडित प्रेम की ज्वाला शांत न हो सकी। इसे कभी महेंद्र ने प्यार किया था, शायद अब भी मन-ही-मन प्यार करता हो - यह बात उसके कलेजे में लहर की तरह फूल-फूल उठने लगी। जरा ही देर बाद महेंद्र जगेगा और वह विनोदिनी को देखेगा, जाने किस नजर से देखेगा।

भारी हृदय लिए आशा राजलक्ष्मी के कमरे में पहुँची। बहुत शर्माती हुई बोली - 'मौसी, तुम रात-भर सोई नहीं, जाओ सो जाओ!' अन्नपूर्णा ने एक बार अच्छी तरह से आशा के चेहरे को देखा। उसके बाद सोने जाने के बजाय आशा को साथ लिए अपने कमरे में गई। बोलीं - 'चुन्नी, खुल कर बात करना चाहती है, तू अब बातों को मन में मत रख। गैर को दोषी बनाने का जो सुख है, मन में दोष रखने का दु:ख उससे कहीं बड़ा है।'

आशा ने कहा - 'मन में कोई गाँठ मैं रखना तो नहीं चाहती हूँ मौसी, सब भूल जाना ही चाहती हूँ, मगर भूलते ही तो नहीं बनता।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'तू ठीक ही कहती है बिटिया, उपदेश देना आसान है, कर दिखाना ही मुश्किल है। फिर भी मैं तुझे एक उपाय बताती हूँ। जी-जान से इस भाव को कम-से-कम रखो, मानो भूल गया है। पहले बाहर से भुलाना शुरू कर, तभी भीतर से भी भूल सकेगी।'

आशा ने सिर झुकाए हुए कहा - 'बताओ, मुझे क्या करना होगा?'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'बिहारी के लिए विनोदिनी चाय बना रही है तू। दूध, चीनी, प्याला - सब-कुछ ले कर जा। मिल कर काम करो!'

आशा आदेश-पालन के लिए उठी। अन्नपूर्णा ने कहा - 'यह आसान है - लेकिन मुझे एक बात और कहनी है, वह और भी सख्त है और उसका पालन तुझे करना ही पड़ेगा। जब-तब महेंद्र से विनोदिनी की मुलाकात होगी ही और तब तेरे मन में क्या होगा, मैं जानती हूँ। लेकिन वैसे मैं कभी कनखियों से भी महेंद्र या विनोदिनी के भाव

को देखने की कोशिश तक न करना। कलेजा फटता रहे, लेकिन अडिग रहना पड़ेगा। महेंद्र यह समझेगा कि तुझे कोई शक नहीं रहा। टूटने के पहले जैसा था, जोड़ वैसा ही जुड़ गया है। महेंद्र या और कोई तेरी शक्ल देख कर अपने को दोषी नहीं समझेगा। चुन्नी, यह कोई मेरा उपदेश नहीं, आग्रह नहीं, यह तेरी मौसी का आदेश है। मैं जब काशी चली जाऊँ, तब तू एक दिन को भी यह बात न भूलना!'

चाय का प्याला लिए आशा विनोदिनी के पास पहुँची। पूछा - 'उबल गया पानी? मैं दूध ले आई हूँ।'

विनोदिनी अचरज से आशा का मुँह ताकने लगी। बोलीं - 'बिहारी भाई साहब बरामदे में बैठे हैं। तुम उनको चाय भेज दो। इतने में बुआ का मुँह धुलाने का इंतजाम करती हूँ। अब जग जाएँ शायद।'

विनोदिनी चाय ले कर बिहारी के पास नहीं गई। उसके प्रेम को कबूल करने के नाते बिहारी ने जो अधिकार उसे दिया था, उसके मनमाने इस्तेमाल में उसे संकोच हुआ। अधिकार पाने की जो मर्यादा है, उसे बचाना हो तो अधिकार के प्रयोग को संयत होना चाहिए। जितना मिलता है, उतने के लिए छीना-झपटी करना कँगले को ठीक लगता है।

इतने में महेंद्र आ पहुँचा। आशा का दिल धक् कर उठा, तो भी अपने को जब्त करके उसने स्वाभाविक स्वर में महेंद्र से कहा - 'तुम इतनी जल्दी जग गए। रोशनी न आए इस वजह से मैंने खिड़कियाँ बंद कर दी थीं।'

विनोदिनी के सामने ही इस सहज भाव से आशा को बात करते देख कर महेंद्र के कलेजे पर मानो कोई पत्थर उतर गया। वह खुश हो कर बोला - 'देखने आ गया कि माँ कैसी है। वे सो रही हैं अभी तक?'

आशा ने कहा, 'हाँ, सो रही हैं। अभी वहाँ मत जाना! भाई साहब ने बताया - आज वे पहले से अच्छी हैं। बहुत दिनों के बाद कल रात-भर वे मजे में सोई हैं।'

महेंद्र निश्चिंत हुआ। पूछा - 'चाची कहाँ हैं?'

आशा ने चाची का कमरा दिखा दिया।

आशा की यह दृढ़ता और संयम देख कर विनोदिनी को भी हैरत हुई।

महेंद्र ने पुकारा - 'चाची!'

अन्नपूर्णा स्नान करके पूजा करने की सोच रही थी। फिर भी उन्होंने कहा - 'आ महेंद्र, आ!'

महेंद्र ने उन्हें प्रणाम किया। कहा - 'चाची, मैं पापी हूँ। तुम लोगों के सामने आते मुझे शर्म आती है।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'ऐसा नहीं कहते, बेटे! बच्चे तो गर्द में सन कर भी माँ की गोद में बैठते हैं।'

महेंद्र - 'मगर मेरी यह धूल कभी धुलने की नहीं, चाची!'

अन्नपूर्णा - 'दो-एक बार झाड़ देने से यह झड़ जाएगी। अच्छा ही हुआ, महेंद्र। तुझे अपने भले होने का अभिमान था। अपने पर तुझे बेहद विश्वास था। पाप की आँधी ने तेरे उस गर्व को तोड़ गिराया है, और कुछ नहीं बिगाड़ा।'

महेंद्र - 'अब तुम्हें मैं न जाने दूँगा, चाची। तुम्हारे चले जाने से ही मेरी यह दुर्गति हुई।'

अन्नपूर्णा - 'मैं रह कर तुझे जिस दुर्गति से बचाती, वह हो गई, अच्छा हुआ। अब तुमको मेरी कोई जरूरत न पड़ेगी।'

दरवाजे पर फिर पुकार मची - 'चाची पूजा करने बैठी हो, क्या?'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'नहीं, तू आ!'

बिहारी अंदर आया। इतने तड़के महेंद्र को जगा देख कर वह बोला - 'जीवन में आज शायद पहली बार तुमने सूर्योदय देखा, भैया!'

महेंद्र ने कहा - 'हाँ भाई, मेरे जीवन में यह पहला सूर्योदय है। तुम्हें चाची से कोई राय करनी है शायद - मैं चलता हूँ।'

बिहारी ने हँस कर कहा - 'तुम्हें भी कैबिनेट का मिनिस्टर बना लिया गया समझो। तुमसे तो मैंने कभी कुछ छिपाया नहीं - ऐतराज न हो तो आज भी न छिपाऊँ।'

महेंद्र - 'मैं और ऐतराज! हाँ, दावा जरूर नहीं कर सकता। तुम अगर मुझसे कुछ न छिपाओ, तो मैं भी फिर से आप अपने ऊपर श्रद्धा करने का मौका पाऊँ।'

बहरहाल, बिहारी के लिए बे-हिचक सब-कुछ कहना मुश्किल था। बिहारी की जबान रुक-सी गई, मगर उसने जोर दे कर कहा - 'ऐसी बात आई थी कि मैं विनोदिनी से विवाह करूँगा - चाची से उसी के बारे में फैसला लेना था।'

महेंद्र सकुचा गया। अन्नपूर्णा चौंक कर बोलीं - 'यह कैसी बात है, बिहारी?'

महेंद्र ने बड़ा बल डाल कर अपने संकोच को हटाया। कहा - 'बिहारी, यह विवाह नहीं होगा।'

अन्नपूर्णा ने कहा - 'इस प्रस्ताव में क्या विनोदिनी का हाथ है?'

बिहारी ने कहा - 'बिलकुल नहीं।'

अन्नपूर्णा बोलीं- 'वह भला क्या राजी होगी इस पर?'

महेंद्र बोला - 'वह भला राजी क्यों न होगी, चाची! मैं जानता हूँ, वह हृदय से बिहारी की भक्ति करती है। ऐसे आश्रय को वह छोड़ सकती है भला!'

बिहारी ने कहा - 'विवाह का प्रस्ताव विनोदिनी से मैंने किया था, भैया। उसने शर्म से इनकार कर दिया है।'

सुन कर महेंद्र चुप रह गया।

54.भले-बुरे राजलक्ष्मी के दो दिन निकल गए। एक दिन सुबह उनका चेहरा खिला-खिला दिख रहा था। पीड़ा का नामोनिशान नहीं था। उसी दिन उन्होंने महेंद्र को बुला कर कहा - 'मैं अब ज्यादा देर की मेहमान नहीं, बेटे, मगर मैं बड़े सुख से मर सकूँगी, महेंद्र, मुझे अब कोई दु:ख नहीं है। तू जब छोटा था, तो तुझे पा कर जो खुशी मुझे थी, आज उसी खुशी से मेरा हृदय भर उठा है - तू मेरी गोदी का लाड़ला है, मेरे कलेजे का रत्न - मैं तेरी सारी बला साथ लिए जा रही हूँ, यही मेरा सबसे बड़ा सुख है।'

इतना कह कर वह महेंद्र के मुखड़े और बदन पर हाथ फेरने लगीं। महेंद्र की रुलाई का बाँध टूट गया।

राजलक्ष्मी ने कहा - 'रो मत बेटे! लक्ष्मी घर में रही। कुंजी मेरी बहू को देना। मैंने सब-कुछ सँजो कर रखा है, गिरस्ती में किसी बात की कमी न पड़ेगी तुम्हें। एक बात और कह लूँ, मेरी मौत से पहले किसी को मत बताना। मेरे बक्स में दो हजार के नोट पड़े हैं। वे रुपए विनोदिनी को दे रही हूँ। वह विधवा है, अकेली है, इन रुपयों के सूद से उसके दिन मजे में कट जाएँगे। मगर उसे अपने यहाँ मत रखना।

राजलक्ष्मी ने बिहारी को बुलवाया। कहा - 'बेटे बिहारी, कल महेंद्र बता रहा था, तूने लाचारजनों की चिकित्सा के लिए एक बगीचा लिया है - भगवान तुम्हें लंबी आयु दे कर गरीबों का भला करे। मेरे ब्याह के समय मेरे ससुर ने मुझे एक गाँव दिया था; वह गाँव मैं तुझे देती हूँ, उसे गरीबों की सेवा में लगाना। इससे मेरे ससुर का पुण्य होगा।'

55.राजलक्ष्मी की मृत्यु के बाद श्राद्धादि खत्म करके महेंद्र ने कहा - 'भई बिहारी, मैं डॉक्टरी जानता हूँ। तुमने जो काम शुरू किया है, मुझे भी उसमें शामिल कर लो! चुन्नी अब ऐसी गृहिणी बन गई है कि वह भी तुम्हारी मदद कर सकेगी। हम सब लोग वहीं रहेंगे।'

बिहारी ने कहा - 'खूब अच्छी तरह सोच देखो, भैया - यह काम हमेशा के लिए कर सकोगे। वैराग्य के इस क्षणिक आवेश में ऐसा स्थायी भाव मत ले बैठो!'

महेंद्र बोला - 'तुम भी जरा सोच कर देखो, जीवन को मैंने इस तरह बखेड़ा किया है कि अब बैठे-बैठे उसके उपभोग की गुंजाइश न रही। इसे अगर सक्रियता में न खींचता चलूँ तो जाने किस रोज यह मुझे अवसाद में खींच ले जाएगा। अपने काम में मुझे शामिल करना ही पड़ेगा।'

यही बात तय रही।

अन्नपूर्णा और बिहारी दोनों बैठ कर शांत उदासी लिए पिछले दिनों की चर्चा कर रहे थे। दोनों के एक-दूसरे से अलग होने का समय करीब था। विनोदिनी ने दरवाजे के पास आ कर पूछा - 'चाची, मैं यहाँ बैठ सकती हूँ।'

अन्नपूर्णा बोलीं - 'आ जाओ बिटिया, आओ!'

विनोदिनी आई। उसने दो-चार बातें करके बिछौना उठाने का बहाना करके अन्नपूर्णा चली गई।

विनोदिनी ने बिहारी से कहा - 'अब मेरे लिए तुम्हारा जो आदेश हो, कहो!'

बिहारी ने कहा - 'भाभी, तुम्हीं बताओ, तुम क्या चाहती हो?'

विनोदिनी बोली - 'मैंने सुना है, गरीबों के इलाज के लिए तुमने कोई बगीचा लिया है। मैं वहीं तुम्हारा कोई काम करूँगी और कुछ न बने तो खाना पकाऊँगी।'

बिहारी बोला - 'मैंने बहुत सोच देखा है, भाभी! इन-उन हंगामों से अपने जीवन के जाल में बेहद गाँठें पड़ गई हैं। अब एकांत में बैठ कर एक-एक करके उन्हीं गाँठों को खोलने का समय आ गया है। पहले सबकी सफाई कर लेनी होगी।'

अब जी जो चाहता है, सबको मान लेने की हिम्मत नहीं पड़ती। अब तक तो गुजरा, जितना कुछ झेला, उन सबके आवर्तन और आंदोलन को शांत न कर लूँ तो जीवन की समाप्ति के लिए तैयार न हो सकूँगी। अगर सारे बीते दिन अनुकूल हों, तो संसार में केवल तुमसे ही मेरा जीवन पूर्ण हो सकता था। अब तुमसे मुझे वंचित होना ही पड़ेगा। सुख की कोशिश अब बेकार है ... अब तो धीरे-धीरे टूट-फूट कर मरम्मत कर लेनी है।'

इतने में अन्नपूर्णा आईं। उनके आते ही विनोदिनी ने कहा, 'माँ, तुम्हें अपने चरणों में मुझे शरण देनी पड़ेगी। पापिन के नाते तुम मुझे मत ठुकराओ।'

अन्नपूर्णा बोली, 'चलो मेरे ही साथ चलो।'

अन्नपूर्णा और विनोदिनी जिस दिन काशी जाने लगीं, मौका ढूँढ़ कर बिहारी ने अकेले में विनोदिनी से भेंट की। कहा, 'भाभी, तुम्हारी कोई यादगार मैं अपने पास रखना चाहता हूँ।'

विनोदिनी बोली, 'अपने पास ऐसा क्या है, जिसे निशानी की तरह पास रखो।'

बिहारी ने शर्म और संकोच के साथ कहा, 'अंग्रेजों में ऐसी रिवाज है, अपनी प्रिय पात्रा की कोई लट याद के लिए रख लेते हैं - तुम अगर...'

विनोदिनी - 'छि: कैसी घिनौनी बात! मेरे बालों का तुम क्या करोगे? वह मुई नापाक चीज कुछ ऐसी नहीं कि तुम्हें दूँ। अभागिन मैं, तुम्हारे पास रह नहीं सकती - मैं ऐसा कुछ देना चाहती हूँ, जो मेरा हो कर तुम्हारे काम में आए।'

बिहारी ने कहा, 'लूँगा।'

इस पर विनोदिनी ने आँचल की गाँठ से खोल कर हजार-हजार के दो नोट बिहारी को दिए।

बिहारी गहरे आवेश के साथ विनोदिनी के चेहरे की ओर एकटक देखता रहा। जरा देर बाद बोला - 'और मैं क्या तुम्हें कुछ न दे पाऊँगा?'

विनोदिनी ने कहा - 'तुम्हारी निशानी मेरे पास है, वह मेरे अंग का भूषण है, उसे कभी कोई छीन नहीं सकता। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

यह कह कर उसने अपने हाथ की चोट का वह दाग दिखाया।

बिहारी हैरान रह गया। विनोदिनी बोली, 'तुम नहीं जानते, यह आघात तुम्हारा है और यह आघात तुम्हारे ही योग्य है। इसे तुम भी वापस नहीं ले सकते।'

मौसी के इतना समझाने-बुझाने के बावजूद विनोदिनी के लिए आशा अपने मन को निष्कंटक न कर सकी थी। राजलक्ष्मी के सेवा-जतन में दोनों साथ जुटी रहीं, पर जब से उसकी नजर विनोदिनी पर पड़ी, तभी उसके दिल को चोट लगी - जबान से आवाज न निकली और हँसने की कोशिश ने उसे दुखाया। विनोदिनी की कोई मामूली सेवा लेने में भी उसका मन नाराज रहता। शिष्टता के नाते विनोदिनी का लगाया पान उसे लेना पड़ा, लेकिन बाद में तुरंत थूक दिया है। लेकिन आज जब जुदाई की घड़ी आई, मौसी दोबारा घर-बार छोड़ कर जाने लगीं और आशा का हृदय आँसुओं से गीला हो उठा, तो विनोदिनी के लिए भी उसका मन भर आया। जो सब-कुछ छोड़-छाड़ कर एकबारगी जा रहा हो, उसे माफ न कर सके, ऐसे लोग दुनिया में कम ही हैं। उसे मालूम था, विनोदिनी महेंद्र को प्यार करती है, क्यों न करे महेंद्र को प्यार! महेंद्र को प्यार करना कितना जरूरी है इसे वह खुद अपने ही मन से जान रही थी। अपने प्यार की उस वेदना से ही आज उसे विनोदिनी पर बड़ी दया हो आई। वह महेन्द्र को छोड़कर सदा के लिए जा रही है, उसका जो दुस्सह दःख है, आशा अपने बहुत बड़े दुश्मन के लिए भी उसकी कामना नहीं कर सकती। यह सोचकर उसकी आँखें भर आईं-कभी उसने विनोदिनी को प्यार भी किया था। वह प्यार उसके जी को छू गया। वह धीरे-धीरे विनोदिनी के समीप जा कर बड़ी ही करुणा के साथ, स्नेह के साथ, विषाद के साथ बोली, 'दीदी, जा रही हो?'

आशा की ठोड़ी पकड़ कर विनोदिनी ने कहा, 'हाँ बहन, जाने का समय आ गया। कभी तुमने मुझे प्यार किया था, अब अपने सुख के दिनों में उस प्यार का थोड़ा-सा अंश मेरे लिए रखना बहन, बाकी सब भूल जाना।'

महेंद्र ने आ कर नमस्ते करके कहा, 'माफ करना, भाभी!'

उसकी आँखों के कोनों से आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ीं। विनोदिनी ने कहा, 'तुम भी मुझे माफ करना, भाई साहब, भगवान तुम लोगों को सदा सुखी रखें!'

—— X ——

# आँख की किरकिरी - Aakh Ki Kirkiri in Hindi


1. आँख की किरकिरी पहला भाग
2. आँख की किरकिरी दूसरा भाग
3. आँख की किरकिरी तीसरा भाग
4. आँख की किरकिरी चौथा भाग